जैन भारती

मार्च 2014 • वर्ष 62 • अंक 3 • वार्षिक ₹ 200

एकसूत्रता में बंधकर आओ खेलें होली

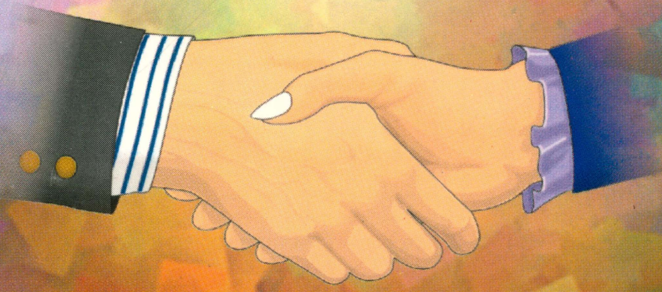

VAB VENTURES

Leadership with Trust...

VAB Ventures Ltd.

60 B Chowringhee Road, Suite : 3/2/1, 3rd Floor
KOLKATA 700020, West Bengal, India
Tel. : (+91) 3322900112-114 | Fax : (+91) 3322900115
E-mail : arihantbaid@vabventures.in, www.vabventures.in

Sugar ♦ Pharmaceuticals ♦ Biotech ♦ Real Estate ♦ Financial Services ♦ Education ♦ Infotech

जैन भारती

वर्ष 62 • मार्च 2014 • अंक 3

संपादक
डॉ. शान्ता जैन

आवरण
गौरीशंकर

अनुक्रम

1.	संपादकीय		5
2.	दंडनीति में नए आयाम	—आचार्य महाप्रज्ञ	7
3.	ज्ञान और जानकारी		12
4.	सोच को प्रशस्त बनाएं	आचार्य महाश्रमण	13
5.	अब भारत को जगना होगा	श्री चन्द्रप्रभ	16
6.	महिला-विकास : समाज-विकास	गुरुदेव तुलसी	21
7.	घेरों में पलती जिंदगी	साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा	27
8.	प्रेरक क्षणिकाएं	मुनि सुखलाल	30
9.	होली का आध्यात्मिक रंग	आचार्य महाप्रज्ञ	31
10.	कहानी सनाथ और अनाथ की	संकलन	35
11.	मानवतावादी दर्शन के क्रियाशील चिंतक	बी. एल. आच्छा	38
12.	जल्दबाजी से बचिए	संकलन	41
13.	जीवन सफर में मील के पत्थर	मानस भारतीय	44
14.	कर्तृत्व की धार तेज करें	पदमचन्द पटावरी	45
15.	मजाकिया शीशा	वियोगी हरि	47
16.	कानून बेचारे	जतनलाल रामपुरिया	49
17.	बहुसंख्यकों द्वारा अल्पसंख्यकों का दमन	लेव तोलस्तोय	53
18.	सकारात्मक सोच से गलत रास्ते बंद	डॉ हीरालाल छाजेड़	55
19.	अपने घर लौट आना है ध्यान	जे के कृष्णमूर्ति	57

संपादकीय संपर्क सूत्र : डॉ. शान्ता जैन, जैन विश्व भारती विश्वविद्यालय, लाडनूं, 341306
प्रकाशकीय कार्यालय : जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, तेरापंथ भवन, महावीर चौक, गंगाशहर, बीकानेर 334401
प्रधान कार्यालय : जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, 3, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कोलकाता 700001
सदस्यता शुल्क : वार्षिक 200/- • त्रैवार्षिक 500/- • दसवर्षीय 1500/- रुपए
* Contact us at: jainbharatitms@gmail.com

पवित्रता और प्रसन्नता का नाम है मैत्री

- मैत्री ऐसा कर्म है जिससे व्यक्ति, जाति, समाज और राष्ट्र की दूरियां मिट सकती हैं।
- मैत्री में मोह नहीं होता, इसलिए वह शक्ति, अधिकार और संग्रह से परे होती है।
- मैत्री भावना के विकसित होने पर व्यक्ति कभी अकेला, अक्षम या दुर्बल नहीं रहता।
- आत्मा की राग-द्वेष रहित परिणति से सौहार्द उत्पन्न होता है।
- मैत्री जीवन के परिष्कार का पहला और जीवन की ऊंचाई का चरम सोपान है।
- मैत्री की लंबी रेखा खींचने के बाद छोटी-छोटी रेखाओं का अस्तित्व कहां रहेगा?
- मैत्री किसी भी प्रतिकूल परिस्थिति में दुश्मनी का रूप नहीं ले सकती।
- अपने प्रति जो मैत्री है, उसका संपूर्ण विस्तार ही प्राणीमात्र के प्रति मैत्री है।
- मैत्री इस तरह बढ़नी चाहिए कि पत्थर दिल भी पिघल जाएं।
- मनुष्य में छिपाने की मनोवृत्ति है, इसलिए मैत्री का स्वर दुर्बल है।
- मैत्री का पौधा समता और सहिष्णुता के धरातल पर ही हरा-भरा रह सकता है।
- मानसिक रूप से टूटे हुए व्यक्ति के लिए सबसे बड़ी सेवा है-मैत्री।
- मैत्री की उत्पत्ति अभय में और विकास विश्वास में होता है।
- मित्र से कोई भय नहीं होता, इसलिए अभय की भूमिका ही मैत्री है।
- नैतिकता का स्रोत मैत्री की भावना से ही प्रवाहित होता है।
- मैत्री की अनुपालना व्यक्ति को निर्द्वंद्व बना देती है।
- मैत्री का विस्तार संसार की बहुत सारी विकट दीखनेवाली समस्याओं की इतिश्री है।

'एक बूंद : एक सागर' पुस्तक से...

आओ, हम खेलें होली

कभी होली जलती थी
अत्याचार और अन्याय की,
आपसी वैमनस्य और अवगुणों की,
आज होली की लपटों में जल रहा है
आपसी सद्भाव।
कभी होली के मोहक रंगों की फुहार से
प्यार, स्नेह और अपनत्व बिखरता था,
आज माटी के साथ कैमिकल गुलाल
और नकली रंगों से फैल रही हैं– बीमारियां,
और बढ़ रही हैं मन की दूरियां।
कभी होली के चंग की धमाल से
जहां मन की रंजिश की गांठें खुलती थीं,
दूरियां सिमटती थीं,
आज होली के हुड़दंग, अश्लील हरकत
और गंदे तथा हानिकारक पदार्थों के प्रयोग से
भयाक्रांत डरे-सहमे लोगों के मनों के बीच
दूरियों की नई दीवारें खड़ी हो रही हैं।

आनंद और उल्लास के
इस सबसे मुखर त्योंहार को
हमने कहां से कहां लाकर खड़ा कर दिया?
विभक्तियों में बंटता-बंटता आदमी का मन
कितना अकेला हो गया कि
अब उसे संगठन, सहयोग, सौहार्द,
समन्वय और संतुलन की संस्कृति भी
भीड़-सी लगने लगी है।
वह भूल ही गया कि होली तो
बुराइयों के विरुद्ध उठा एक प्रयत्न है।
इससे जिंदगी जीने का नया अंदाज मिलता है।
औरों के दुःख-दर्द को बांटा जाता है।
बिखरती मानवीय संवेदनाओं को जोड़ा जाता है।
काश! होली की जलती इन लपटों में
अब होली जले आतंकवाद की,
हिंसा और पृथक्तावाद की,
घृणा और वैमनस्य की।
और तब भारतीय संस्कृति के
इस पुनीत पर्व से रश्मियां फैलेंगी-
समता और सद्भाव की,
न्याय और समानता की,
स्नेह और सौहार्द की,
आत्मीयता और भाईचारे की।
तब एक ही स्वर उभरेगा-
'एकसूत्रता में बंधकर, आओ हम खेलें होली।'

—मुमुक्षु शान्ता

दंडनीति में नए आयाम

—आचार्य महाप्रज्ञ

इस संसार में कोई भी दृश्य-वस्तु या कृत-व्यवस्था शाश्वत नहीं है। अनेकांत के दो शब्द हैं—ध्रुव और परिवर्तन। केवल अस्तित्व ध्रुव है। आत्मा का अस्तित्व है, वह ध्रुव है। आकाश का अस्तित्व है, वह ध्रुव है, किंतु जितने पर्याय हैं, वे पैदा होते हैं, नष्ट होते हैं। वे ध्रुव नहीं हैं। जो कृत है, मनुष्य ने जिसका निर्माण किया है वह ध्रुव और नित्य नहीं है। तर्कशास्त्र का एक सूत्र बन गया कि जो-जो किया हुआ है, वह सारा अनित्य है। व्यवस्था मनुष्य के द्वारा की हुई है। व्यवस्था कभी नित्य नहीं हो सकती।

कुलकर की व्यवस्था चल रही थी। अभिचंद्र चौथे कुलकर बने। अभिचंद्र ने उसी हाकार नीति और माकार नीति से अपने शासन का संचालन किया।

कुलकर वर अभिचंद्र ने, ले नय–द्वय आधार।
शासन संचालन किया, पिता पुत्र अनुकार।।
सम गति से चलता रहा, सरिता सलिल प्रवाह।
चाह बिना कैसे मिले, कोई नूतन राह।।

अभिचंद्र का समय भी बीता। हर व्यक्ति की अवधि है, चाहे वह देवता हो या मनुष्य। आदमी जब तक मोक्ष की अवस्था को प्राप्त नहीं हो जाता तब तक वह कालातीत नहीं हो सकता। हर व्यक्ति की अवस्था सावधिक है। चाहे पचास वर्ष हो, सौ वर्ष या हजार वर्ष, आखिर अवधि निश्चित है। मैंने देखा कि कुछ लोग शिखर पर होते हैं तो बहुत अहंकार आ जाता है। इतना अहंकार कि ऐसा लगता है बस दुनिया में इससे बड़ा कोई आदमी नहीं है।

दो-चार वर्ष के बाद देखा—उसका कोई नाम ही नहीं जानता। उसे कोई याद करना नहीं चाहता। ऐसा नहीं लगता कि उसका कोई अस्तित्व था। कितने लोगों को हमने देख लिया और कितनों को पढ़ लिया। एक झूठी कल्पना और झूठी माया है। आदमी सचाई को समझता नहीं है और अहंकार में चला जाता है।

एक मुख्यमंत्री ने कलक्टर को आदेश दिया—'तुम्हारे यहां जो बेईमान अधिकारी हैं, उनकी सूची बनाओ।'

कलक्टर ने लिखा कि मुख्यमंत्री महोदय! यह बड़ा टेढ़ा काम है। आप यह आदेश दें कि ईमानदार अधिकारी कितने हैं तो मैं तत्काल सूची बनाकर भेज दूं।

अगर हम सूची बनायें कि इस दुनिया में आए, अहंकार का जीवन जीया, तो बड़ा मुश्किल है। अहंकार नहीं किया, शांति के साथ रहे, यह सूची बनाना हो तो बहुत छोटी सूची होगी। उस समय का जीवन आज की तरह छोटा नहीं था, सौ वर्ष का जीवन नहीं था। इतना लंबा जीवन था कि आज का आदमी सोच ही नहीं सकता। उस युग में कभी अकाल मृत्यु नहीं होती थी। पूरा जीवन जीया जाता था। प्रलंब जीवन की भी आखिर अवधि है। अवधि आयी और चौथा कुलकर भी काल की शरण में चला गया।

अभिचंद्र का पुत्र प्रसेनजित पांचवां कुलकर बना। उसने पिता की नीति का अनुसरण किया। हाकार नीति और माकार नीति—इन दोनों से शासन का संचालन किया, पर भीतर में परिवर्तन की प्रक्रिया चल रही थी। हमें परिवर्तन का पता चलता है, परिवर्तन की प्रक्रिया का पता नहीं लगता।

हमारे दो जगत हैं—एक सूक्ष्म जगत और एक स्थूल जगत। सूक्ष्म जगत में जो होता है उसका हमें पता नहीं चलता। जब वह स्थूल जगत में बाहर आता है तब आदमी को पता चलता है। आप अपने शरीर को देख लें। क्या बुढ़ापा एक दिन में आता है? एक दिन में बुढ़ापा नहीं आता। बीमारी क्या एक दिन में आती है? एक दिन में बीमारी नहीं आती।

आज वैज्ञानिक जगत में भी यह मान लिया गया कि स्थूल शरीर में भी बीमारी का पता छह महीने बाद लगता है। सूक्ष्म शरीर के स्तर पर बीमारी पहले ही पैदा हो जाती है। महीनों तक भीतर ही भीतर रहती है। बाहर कोई पता नहीं लगता। जब स्थूल स्तर पर आती है तब हमें पता लगता है कि बीमारी हो गई। हर वस्तु पहले सूक्ष्म जगत में पलती है, फिर स्थूल जगत में प्रकट होती है। परिवर्तन की भी यही प्रक्रिया है।

परिवर्तन निरंतर होता रहता है, पर एक बिंदु ऐसा आता है तब हमें पता लगता है कि अब परिवर्तन हो गया है। हो रहा है, इसका हमें पता नहीं लगता। चाहे आप किसी भी साम्राज्य का, किसी भी राष्ट्र का, किसी भी समाज का, किसी भी जाति और संगठन का इतिहास देखें, उसकी सूक्ष्मेक्षिका से समीक्षा करें। आपको पता चलेगा कि परिवर्तन कैसे हो रहा था और एक बिंदु आया—घटना घटित हो गई। आग से घड़ा निकाला। गर्म घड़ा, पानी की एक बूंद डाली, पता ही नहीं लगा। दो डाली, पता ही नहीं लगा। बूंद डालते चले जाओ। डालते-डालते एक क्षण ऐसा आएगा कि घड़ा गीला हो गया है।

प्रश्न हो सकता है कि घड़ा किस बूंद से गीला हुआ? क्या पानी की अंतिम बूंद से गीला हुआ? कभी नहीं हो सकता। पहली बूंद ने ही घड़े को गीला करना शुरू कर दिया, पर गीला हुआ है, यह अभिव्यक्त तब होता है जब अंतिम बूंद गिरती है। परिवर्तन की यही प्रक्रिया है—चलते-चलते एक क्षण ऐसा आता है, तब पता चलता है—आज परिवर्तन हो गया, आज क्रांति हो गई। आज सेना ने क्रांति कर दी। आज अमुक संस्था ने क्रांति कर दी। आज अमुक विद्वान ने, आचार्य ने क्रांति कर दी। क्रांति एक दिन में कभी घटित नहीं होती। उस प्रक्रिया के अंतिम क्षण का हमें पता लगता है। परिवर्तन हो रहा था, उसका पता नहीं चलता।

उस युग में परिवर्तन दो स्तरों पर हो रहा था—चेतना के स्तर पर भी और वस्तु जगत के स्तर पर भी। जो चेतना सहज थी, वह थोड़ी असहजता की ओर जा रही थी। जिस चेतना में सहज शांति, सहज कषाय का उपशमन, सहज विरक्ति, सहज अनासक्ति, न कभी क्रोध, न कभी अहंकार, न लोभ की मात्रा थी। वह चेतना विकृत बनने लगी। अब धीरे-धीरे सब बीज बुआई में आ गए। थोड़ा-थोड़ा क्रोध भी प्रकट होने लगा। थोड़ा-थोड़ा अहंकार भी आने लगा। थोड़ा-थोड़ा लोभ भी जागने लगा। जो चेतना सहज थी, अब विकृति की ओर आने लग गई। यह चेतना के स्तर पर परिवर्तन था। दूसरा परिवर्तन पदार्थ के स्तर पर हो रहा था। पदार्थ में जो शक्ति थी, वह धीरे-धीरे

कम होने लग गई। उतनी शक्ति नहीं रही, जितनी पहले थी। दोनों स्तरों पर परिवर्तन शुरू हुआ।

प्रसेनजित ने देखा कि बदलाव आ रहा है। कुछ यौगलिक आए। बोले—'प्रसेनजित! छीना-झपटी फिर शुरू हो गई। हमारे कल्पवृक्षों पर दूसरे लोग अधिकार करने लग गए।'

प्रसेनजित ने पूछा—'तुमने हाकार नीति का प्रयोग नहीं किया?'

'हमने किया।'

'माकार नीति का प्रयोग नहीं किया?'

'किया, फिर भी माने नहीं।'

प्रसेनजित ने सोचा—अब हाथी अंकुश को नहीं मान रहा है। दूसरा उपाय करना चाहिए। शब्द की अपनी शक्ति है। 'हा' शब्द खेदसूचक होता है। मुझे खेद है कि आप ऐसा करते हैं। यह शक्ति भी कमजोर पड़ गई। 'माकार' निषेधवाचक है। निषेध की शक्ति भी कम हो गई। प्रसेनजित ने यौगलिकों से कहा—'मैं कुछ दिनों में समाधान दूंगा तुम्हारी बात का।' प्रसेनजित विशिष्ट ज्ञानी था, उसने चिंतन किया। चिंतन के बाद सोचा—अब ये दोनों 'हा' और 'मा' असफल हो रहे हैं, अब तेज दवा की जरूरत है। बीमारी बढ़ गई, अब त्रिफला से काम नहीं चलेगा। उसने सोचकर कहा—'अब हम धिक्कार नीति को काम में लेंगे। जहां 'हा' से न माने, 'मा' से भी न माने वहां कहो 'धिक्कार'।' तीसरी नीति का प्रवर्तन हो गया।

अतिक्रमण का दौर चला अति,
टूट गया संचित संभाग।
काम वीचि से उद्वेलित जन,
देता ज्यों लज्जा को त्याग।।

दमन सरल है, कठिन हृदय का
परिवर्तन चिरकालिक सत्य।
हृत् परिवर्तन एक कल्पना,
दंड सर्वसम्मत-सा तथ्य।।

जैसे-जैसे अतिक्रमण की,
घटनाओं का फैला जाल।
वैसे-वैसे ही मानव ने,
ओढ़ी दंड शक्ति की छाल।।

आवर्तन धिक्कार नीति का,
है प्रसेनजित का अवदान।
बना निरंकुश पर यह अंकुश,
शब्द शक्ति शासित संज्ञान।।

शब्द और अर्थ—इन दोनों में बड़ा संबंध है। अगर शब्द का अर्थ जान लें तो शब्द में बहुत बड़ी शक्ति है और अर्थ न जानें तो केवल शब्द में कुछ भी नहीं है। न्यायशास्त्र और तर्कशास्त्र में शब्द और अर्थ की बहुत मीमांसा हुई। बड़ा विवाद हुआ है शब्द और अर्थ का। जब तक हम अर्थ को न जानें तब तक शब्द साधारण है। बड़ी भ्रांति भी पैदा करता है। एक जर्मन का व्यक्ति है, एक फ्रेंच बोलने वाला है, उसको आप कह दें—मूर्ख आदमी है। क्या प्रतिक्रिया होगी उस पर?

एक विदेशी मद्रास में रिक्शे पर जा रहा था। कोई बड़ा मकान आया, उसने पूछा—किसने बनाया?

तमिल व्यक्ति ने अपनी भाषा में कहा—'मैं नहीं जानता।' अंग्रेज ने समझ लिया कि इसको बनाने वाले का नाम है—'मैं नहीं जानता'। फिर कोई यूनिवर्सिटी आ गई। बड़े-बड़े मकान। उसने पूछा—'यह किसने बनाया?'

'मैं नहीं जानता।'

चार-पांच बार इस प्रकार पूछा, वही उत्तर मिला—मैं नहीं जानता। एक शवयात्रा आ रही थी। बहुत लोग थे। उसने पूछा—'यह कौन है?'

'मैं नहीं जानता।'

वह विदेशी नीचे उतरा, सिर झुकाया और बोला—'मैं नहीं जानता' को नमस्कार, जिसने इतना सब कुछ बनाया और आज इस दुनिया से जा रहा है।'

जो शब्द का अर्थ नहीं जानता उसके लिए शब्द का कोई विशेष मूल्य नहीं है। जब शब्द का अर्थ जाने तब उसकी प्रतिक्रिया होती है। जो हाकार का अर्थ नहीं जानता, जो माकार का अर्थ नहीं जानता और जो धिक्कार का अर्थ नहीं जानता उसे सौ बार धिक्कार कह दो, कोई फर्क नहीं पड़ेगा, किंतु हमारे मस्तिष्क में ऐसे प्रकोष्ठ हैं जो अर्थ को जानते हैं। क़िसी को 'हा' कहो, 'मा' कहो तो बड़ी मुश्किल हो जाती है। किसी को धिक्कार कह दो तो बड़ी मुसीबत है। भर्तृहरि ने कहा–धिक्कार है काम को, धिक्कार है उस महारानी को, धिक्कार है उस महावत को, धिक्कार है कामदेव को, धिक्कार है स्वयं मुझे। धिक्कार कितना कटु शब्द होता है। कितना अपमान, कितना तिरस्कार धिक्कार शब्द में जुड़ा हुआ है, यदि हम धिक्कार शब्द के अर्थ को जान लें।

एक बड़ा विषय है इतिहास की दृष्टि से मीमांसा करने का। पहले यौगलिकों ने शब्द को पकड़ा या अर्थ को? अगर कुलकर 'हा', 'मा' और 'धिक्' शब्द को चला देते और यौगलिक उसका अर्थ नहीं जानते तो कुछ भी नहीं होता। पहले उसका अर्थ भी समझाया गया। 'हा' शब्द का प्रयोग क्या कहना चाहता है? 'मा' और 'धिक्' शब्द का अर्थ भी समझाया तब उनके मस्तिष्क में एक विशेष प्रकार की रचना हो गई–'हा' कहे तो क्या प्रतिक्रिया होनी चाहिए? 'मा' और 'धिक्' कहे तो क्या प्रतिक्रिया होनी चाहिए?

हम शब्द की शक्ति पर विचार करें। शब्द की शक्ति अर्थ के बिना काम नहीं देती। जब अर्थ स्पष्ट होता है तब शब्द की शक्ति काम देती है। मंत्र का जप करने वाले, सामायिक पाठ करने वाले स्वयं सोचें–हम शब्द को जानते हैं या अर्थ को? अगर अर्थ को नहीं जानते हैं तो बात अधूरी रह जाती है। अर्थ को जानना भी पर्याप्त नहीं है, उसके तात्पर्यार्थ को भी जानना होगा। जब तक तात्पर्यार्थ समझ में नहीं आता, पूरी बात समझ में नहीं आती। शब्द भी बहुत बार भ्रांति पैदा कर देते हैं। शब्द में शक्ति अर्थ की शक्ति से आती है। हम ठीक अर्थ को समझ लें। अर्थ को समझे बिना न जाने कितनी गड़बड़ियां हुई हैं–कुछ अर्थ था और कुछ समझ लिया गया।

यौगलिक युग में भाषा का पूरा विकास नहीं हुआ था। उस समय का शब्दकोश बहुत छोटा रहा होगा। आज के वैज्ञानिक पशुओं की बोली का अध्ययन कर रहे हैं, पक्षियों की बोली का अध्ययन कर रहे हैं, निष्कर्ष निकाल रहे हैं। बंदर के शब्दकोश में कितने शब्द हैं? गाय कितने शब्द बोलती है? अमुक पशु कितने शब्द बोलता है? अमुक पक्षी कितने शब्द बोलते हैं? उनका शब्दकोश बनाया जाए तो शायद किसी भी पशु-पक्षी का शब्दकोश 20-30 शब्दों से ज्यादा बड़ा नहीं है। इतने शब्दों में सारी बातें समा जाती हैं।

मनुष्य ने इतना विकास किया है कि लाखों शब्द हो गए। इतना भाषा का विकास, इतना शब्दों का विस्तार। आज शब्दकोश का विस्तार होता ही जा रहा है, किंतु आदिम युग, युग का प्रारंभ क्षण था। बहुत कम बात होती थी। इतनी लंबी आयु और इतना छोटा शब्दकोश। बात करना जानते ही नहीं थे। समय कैसे बीतता? न रसोई बनानी थी, न कपड़े बुनने थे, न खेती करनी थी। कोई काम न हो तो बात करना सबसे बड़ा काम है। बात करना जानें तो आराम से पूरा दिन बीत जाए।

उस समय कोई कथा नहीं थी–न स्त्री-कथा, न राज-कथा, न भक्त-कथा, न देश-कथा। राजनीति की कोई कथा नहीं थी। आज राजनीति की कथा इतनी बड़ी है कि पांच-दस लोग बैठ जायें तो राजनीति की कथा का कोई अंत ही नहीं आएगा। भोजन और काम की कथा भी बहुत बड़ी है। उस समय तो कुछ नहीं था। उनका समय कैसे बीतता था?

इससे हम एक निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि जब चेतना सहज होती है तब उसमें इतना आनंद

होता है कि समय का पता ही नहीं लगता। जिसके मन में आनंद कम है उसको लगता है—समय बहुत भारी हो गया। जो आनंद में है उसको पता ही नहीं लगता। जब आइंस्टाइन से पूछा गया—'आपका यह सापेक्षवाद का सिद्धांत क्या है? उन्होंने बहुत सरलता से समझाया—एक आदमी भट्ठी के पास बैठा। तेज उष्मा आ रही है। दस मिनट का समय उसको दो घंटे जितना लगेगा। एक व्यक्ति अपनी पत्नी से बात कर रहा है तो घंटा भर का समय उसको पांच-दस मिनट जितना लगेगा। यह मेरा सापेक्षवाद है। काल तो उतना ही बीता, पर उसका बोध-सापेक्ष है।

एक जैनाचार्य के पास राजा विश्वभूति आया, बोला—'गुरुदेव! देवताओं का आयुष्य इतना लंबा होता है, क्या वे बैठे-बैठे थक नहीं जाते? कैसे समय बीतता होगा?'

गुरु ने कहा—'उनमें इतना सुख है कि समय का पता ही नहीं चलता।'

राजा बोला—'महाराज! बात समझ में नहीं आयी। यह कैसे हो सकता है?'

आचार्य क्षीरास्रव लब्धि से संपन्न थे। यह एक वाक्लब्धि है। इस लब्धि से संपन्न व्यक्ति बोलना शुरू करे तो ऐसा लगता है—जैसे दूध की मिठास आ रही हो। सुनने वालों को काल का बोध नहीं होता। आचार्य ने कहा—'जरा बैठो, मैं थोड़ा प्रवचन कर दूं, फिर उत्तर दूंगा।' प्रवचन करने बैठ गए। सुबह नौ बजे बैठे और शाम को प्रवचन संपन्न किया। आचार्य ने कहा—'राजन्! इतना विलंब हो गया, अभी तक तुम उठे ही नहीं?

राजा बोला—'महाराज! मुझे समय का पता ही नहीं चला।'

आचार्य बोले—'राजन्! तेरा काल-बोध कहां चला गया?'

राजा बोला—'महाराज! इतना आनंद आ रहा था कि समय का पता ही नहीं चला।'

आचार्य ने कहा—'देवता इतने सुख और आनंद में रहते हैं कि उनको समय का पता ही नहीं चलता।'

काल का बोध स्थितिसापेक्ष है। किसी खराब वातावरण में चला जाए तो व्यक्ति कहेगा कि दो मिनट में ही ऊब गया। किसी अच्छे वातावरण में चला जाए तो कहेगा कि समय का पता ही नहीं चला। उस समय भीतर का आनंद प्रकट हो जाता है। यौगलिक युग में भीतर का इतना आनंद था कि समय का उनको पता नहीं चलता था।

तीन अवस्थाएं हैं—अविकास की अवस्था, विकास की अवस्था और विकासोत्तर अवस्था। यौगलिक युग में अविकास की अवस्था थी, वस्तु जगत का विकास नहीं हुआ था किंतु आनंद बहुत था। एक विकास की अवस्था आती है जहां वस्तु जगत का विकास हुआ, वस्तु का सुख घट गया। विकासोत्तर अवस्था भी अविकास की अवस्था है। एक ध्यान करने वाला मुनि ध्यान में बैठता है, कैसे समय बीतता है? वह कहेगा—समय है कहां, पता ही नहीं चलता। वह इतने ध्यान के आनंद में रहता है कि समय का उसको बोध नहीं होता।

यौगलिक युग में इतना सहज आनंद था कि समय का कोई पता ही नहीं चलता था। धीरे-धीरे उसमें ह्रास आना शुरू हुआ तब इन तीन नीतियों का विकास हुआ। हाकार, माकार और धिक्कार—यह केवल शब्द शक्ति का दंड है, केवल शब्द का अनुशासन है।

हाकार, माकार और धिक्कार—इन तीनों के द्वारा प्रसेनजित ने शासन का संचालन करना शुरू कर दिया। यह पांचवें कुलकर तक की कथा है। आगे कैसे विकास हो रहा है? कैसे वस्तु जगत के विकास के क्षेत्र में मनुष्य अपने चरण रख रहा है? इस प्रश्न का समाधान आदिम युग की गाथा के कुछ नए पृष्ठ उद्घाटित करेगा। ❑

ज्ञान और जानकारी

- ज्ञान और जानकारी में अंतर है।
- ज्ञान है स्वानुभव आत्मा का स्वभाव और जानकारी बुद्धि का गुण।
- ज्ञान व्यक्त होता है। जानकारी की जाती है।
- जानकारी का आदान–प्रदान होता है, ज्ञान का नहीं।
- जानकारी मस्तिष्क में हलचल पैदा करती है।
- ज्ञान मस्तिष्क की हलचल शांत होने पर प्रकट होता है।
- जो पढ़ा–लिखा, सुना और सोचा जाता है, वह है जानकारी।
- जानकारी का स्मरण और विस्मरण होता है, ज्ञान का नहीं।
- जानकारी उधार का ज्ञान है। ज्ञान सहज ज्ञान है।
- उधार का ज्ञान सहज ज्ञान का आवरण है।
- उधार के ज्ञान से व्यक्ति पंडित बनता है, ज्ञानी नहीं।
- उधार के ज्ञान से जो मुक्त है, वह ज्ञानी है, संत है।
- ज्ञान न सीखा जाता है और न भूला जाता है।
- जो सीखा और भूला जाता है, वह ज्ञान नहीं, जानकारी है।
- सीखे हुए को भूल जाओ, ज्ञानी बन जाओगे।
- नया–नया सीखते रहो, अज्ञानी के अज्ञानी बने रहोगे।

–संत अमिताभ

सोच को प्रशस्त बनाएं

आचार्य महाश्रमण

मनुष्य एक क्रियाशील प्राणी है। प्रतिक्षण वह किसी न किसी क्रिया में संलग्न रहता है। सामान्यतया आदमी निष्क्रिय नहीं बैठ सकता। श्रीमद्भगवद्गीता का कथन है—नहि देहभृतां शक्यं त्यक्तुं कर्मण्यशेषत:। सामान्य शरीरधारी प्राणी संपूर्ण क्रिया को छोड़ दे, यह संभव नहीं है। प्रश्न होता है कि आदमी सबसे अधिक कौन-सी क्रिया करता है? प्रयोग और परीक्षण के आधार पर यह निष्कर्ष सामने आया कि मनुष्य सबसे अधिक सोचने की क्रिया करता है। सोचना एक ऐसी क्रिया है जो हर क्रिया के साथ संपृक्त रह सकती है। व्यक्ति चलते समय सोचता है। खाते समय विचारों के उपवन में घूमता है। यहां तक कि व्यक्ति नींद में भी चिंतन-मुक्त नहीं रहता।

एक जिज्ञासु ने किसी दार्शनिक से चार प्रश्न पूछे। उसका पहला प्रश्न था—'इस जगत में सबसे बड़ा कौन है?' उत्तर मिला—'आकाश।' दूसरी जिज्ञासा की गई—'संसार में सबसे आसान काम क्या है?' संयत स्वर उभरा—'बिन मांगी सलाह देना।' तीसरी समस्या रखी गई—'विश्व में सबसे कठिन काम क्या है?' प्रत्युत्तर में कहा गया—'अपनी पहचान।' अंतिम प्रश्न था—'दुनिया में सबसे अधिक गतिशील क्या है?' दार्शनिक ने कहा—'विचार।'

विचार की गतिशीलता

वस्तुत: विचार सबसे अधिक गतिशील होता है। मन का कार्य है—स्मृति, चिंतन और कल्पना। मन एक क्षण में कहीं का कहीं पहुंच जाता है। सोचने का, चिंतन का सिलसिला निरंतर चलता रहता है। सामान्य आदमी का मन किसी एक आलंबन पर स्थिर नहीं रहता। वह चंचल है, व्यग्र है, विचरणशील है, इसलिए सामान्यतया वह पकड़ में नहीं आता। श्रीमद्भगवद्गीता में अर्जुन और श्रीकृष्ण के संवाद से भी यह कथ्य ध्वनित होता है। अर्जुन श्रीकृष्ण से कहते हैं—

चंचलं हि मन: कृष्ण! प्रमाथि बलवद् दृढ़म्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्।।

हे कृष्ण! यह मन चंचल है, हठी है, बलवान है। इसको मैं वश में करना चाहता हूं किंतु मुझे लगता है कि जैसे—हवा को वश में करना मुश्किल है वैसे

ही इस मन को भी वश में करना मुश्किल है। श्रीकृष्ण ने अर्जुन के विचार के साथ सहमति प्रकट करते हुए समाधान की भाषा में कहा–

असंशयं महाबाहो! मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय! वैराग्येण च गृह्यते।।

हे अर्जुन! निस्संदेह मन चंचल है और उसे वश में करना कठिन है, पर निराश होने की अपेक्षा नहीं है। अभ्यास और वैराग्य–इन दो उपायों के द्वारा मन का निग्रह किया जा सकता है।

बहुधा देखा जाता है कि आदमी मन की बैसाखी के सहारे ही चलता है और वह आलंबन कभी-कभी उसके लिए खतरे की घंटी भी बन जाता है। मन की चंचलता से मनुष्य व्यथित है।

मन लोभी मन लालची, मन चंचल मन चोर।
मन के मते न चालिए, पलक-पलक मन ओर।।

इस पद्य में मन को निकृष्ट और हेय बताया गया है। चिंतन का यह एक पक्ष है। दूसरी दृष्टि से विचार करें तो मन अच्छा भी है। मन से ही भगवान का स्मरण किया जाता है। मन के द्वारा ही किसी के हिताहित का चिंतन किया जाता है। मन के माध्यम से समस्याओं का समाधान भी पाया जा सकता है। मन हमारा नौकर है, पर कभी-कभी नौकर भी मालिक को परेशान कर देता है। अपेक्षा है कि मन को संस्कारी बनाया जाए। संयत बनाया जाए और उसे अच्छी सोच में नियोजित किया जाए।

प्रश्न होगा कि सोच को सम्यक् कैसे बनाया जाए? अध्यात्मविदों ने सोच की प्रक्रिया को प्रस्तुति दी। उनके अनुसार व्यक्ति मित, हित और ऋत (यथार्थ) चिंतन करें। इस त्रिपदी के प्रयोग से वह वैयक्तिक, पारिवारिक और सामूहिक दृष्टि से विकास के नये कीर्तिमान स्थापित कर सकता है।

मित-चिंतन

कैसे सोचें? यह बहुत महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। हर कार्य को करने का अपना एक तरीका होता है, एक शैली होती है। सोचने का भी तरीका होता है। योजनाबद्ध कलात्मक तरीके से किया गया प्रशस्त चिंतन लाभदायक होता है। प्रशस्त सोच का पहला बिंदु है–मित चिंतन। मित चिंतन अर्थात् सीमित चिंतन। सीमातिरिक्त सोचना मनुष्य का स्वभाव सा बन गया है। वह निष्प्रयोजन सोचता रहता है। लक्ष्य प्रतिबद्ध होकर आदमी सोचे तो बात समझ में आती है, पर बिना ही प्रयोजन दिमाग में विचारों की उधेड़-बुन चलती रहती है।

आदमी सोता है विश्राम के लिए, पर सोते समय दिमाग को खाली करके नहीं सोता। टी.वी. सीरियल की तरह विचारों के प्रतिबिंब उभरते रहते हैं। आदमी पूरी और गहरी नींद नहीं ले पाता और वह अनिद्रा का शिकार हो जाता है। खाना खाते समय भी मन स्मृति और कल्पना दोनों के साथ उड़ान भरता रहता है। फलत: क्या खाया? कितना खाया अथवा खाया या नहीं? कभी-कभी यह भी भान नहीं रहता। आदमी चलता है। चलते समय भी विचारों का प्रवाह नहीं रुकता। कभी-कभी तो आदमी विचारों में इतना खो जाता है कि उसका गंतव्य पथ छूट जाता है और वह दूसरे मार्ग पर चल पड़ता है।

यह सत्य है कि सामान्य व्यक्ति सर्वथा चिंतनमुक्त नहीं हो सकता, पर वह एक सीमा रेखा तो खींच ही सकता है। हालांकि समस्या के समाधान के लिए और नए सृजन के लिए चिंतन करना अपेक्षित भी है, पर चिंतन कब करना? कितना करना? कैसे करना? यह विवेक भी आवश्यक है।

मस्तिष्कीय ज्ञान-तंतुओं को क्रियाशील और सक्षम बनाए रखने के लिए आवश्यक है कि आदमी उतना ही सोचे जितना आवश्यक है। जिस समय जो क्रिया करे, मन उसी में लीन रहे। इस पद्धति से चिंतन संयमित हो सकता है। प्रेक्षाध्यान के संदर्भ में इस क्रिया को भावक्रिया कहा जाता है। इसमें मन को एक आलंबन मिल जाता है। मन को एकाग्र करने

का सबसे सरल उपाय है—श्वास पर चित्त को केंद्रित करना।

मैंने एक बार युवकों की एक गोष्ठी में दीर्घश्वास के साथ नमस्कार मंत्र के जप की बात कही। कुछ दिन बाद एक व्यक्ति मेरे पास आया और बोला—युवाचार्यश्री! आपने तो मेरी समस्या का समाधान कर दिया। मैं अनिद्रा की बीमारी से ग्रस्त था। आपके कथन के अनुसार मैंने नमस्कार महामंत्र का जप शुरू किया। इससे मेरी अनिद्रा की समस्या को समाधान मिल गया।

हित चिंतन

प्रशस्त सोच का दूसरा बिंदु है—हित चिंतन। व्यक्ति ऐसा चिंतन करे जिससे स्वयं का भी भला हो, दूसरों का भी भला हो। स्वयं का भी मंगल हो, दूसरों का भी मंगल हो। दूसरों के बारे में असत् चिंतन करने से सामनेवाले का नुकसान होता है या नहीं, हम इस चर्चा में न भी जाएं किंतु यह निश्चित है कि स्वयं का तो अहित होता ही है।

भारतीय संस्कृति का महत्त्वपूर्ण संदेश है—

सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चित् दुःखभाग् भवेत्।।

सभी प्राणी सुखी हों, सभी निरामय हों, सभी कल्याण के मार्ग पर चलें, कोई दुःखी न बनें।

जीवन में अनेक समस्याएं आ सकती हैं। समस्याओं से घबराकर भागना पलायन है। समस्याओं की स्थिति में निराश हो जाना कायरता है। व्यक्ति सोचे—समस्याएं सबक सिखाने के लिए आती हैं, इसलिए उन्हें प्रकृति का उपहार समझकर विधायक चिंतन को अवसर देना चाहिए। 'जो होता है वह अच्छे के लिए होता है' ऐसा चिंतन करने वाला व्यक्ति सफलता के शिखर पर आरूढ़ हो जाता है।

करना और होना, दो अलग-अलग क्रियाएं हैं। दोनों में बड़ा अंतर है। किसी भी कार्य को करते समय आदमी सावधानी रखे। चिंतनपूर्वक व योजनाबद्ध कार्य करे। भावी परिणाम को सामने रखकर काम करे, यह जरूरी है। कार्य शुरू करने के बाद जो भी अच्छा-बुरा परिणाम आए, उसे सहजता से झेले। 'जो हुआ वह अच्छे के लिए हुआ।' —ऐसा मानकर स्वीकार करे। उदाहरण के रूप में हम समझें—एक व्यापारी है। वह व्यापार करता है। व्यापार प्रारंभ करने से पूर्व वह सोचता है कि मैं व्यवसाय कहां करूं? किस वस्तु का करूं? किसके साथ करूं? यह योजना-निर्माण उसका कर्तृत्व है। यह 'करना' हुआ। चिंतनपूर्वक व्यापार आरंभ कर दिया। व्यापार शुरू करने के बाद घाटा-मुनाफा जो भी होता है, वह होना है, करना नहीं है। जो हुआ है, वह अच्छे के लिए ही हुआ है। यह विचार व्यक्ति को जीवन की नई दिशा देता हुआ उसके वर्तमान पथ को आलोकित करता है।

ऋत चिंतन

प्रशस्त सोच का तीसरा बिंदु है—ऋत चिंतन। ऋत चिंतन अर्थात् यथार्थ चिंतन। कुछ लोग कल्पनाप्रिय होते हैं। गगनचुंबी योजना बनाते हैं, पर क्रियान्विति के लिए उनके पास ठोस जमीन नहीं होती। ऐसे व्यक्ति प्रथम तो किसी कार्य को शुरू करते ही नहीं। यदि कर भी देते हैं तो उसे निष्पत्ति तक नहीं पहुंचा सकते। आजकल प्रबंधन की चर्चा जोर-शोर से प्रचलित है। समयबद्ध कार्य करने की बात प्रबंधन की हर इकाई के साथ जुड़ी हुई है। आप कोई भी योजना बनाएं, निर्धारित समय-सीमा के भीतर-भीतर उसे निष्पत्ति तक पहुंचाने का लक्ष्य बनाएं। अन्यथा **कालः पिबति तद् रसम्** अर्थात् कार्य में होने वाला विलंब उसके रस को खत्म कर देता है, वाली कहावत चरितार्थ हो जाती है।

मनुष्य विचार करता है। विचारों के अच्छे और बुरे होने का मूलभूत कारण है—भाव। मन स्थूल है। मन के पीछे या मन के भीतर छिपा है भाव। भाव अशुद्ध है तो मन शुद्ध कैसे होगा? विचार शुद्ध कहां से आएगा? अतः अपेक्षा है भावशुद्धि की। प्रशस्त सोच से भाव शुद्ध बनते हैं और भावशुद्धि से प्रशस्त सोच का निर्माण होता है। यह इनका अन्योन्याश्रित संबंध है। ❒

अब भारत को जगना होगा

श्री चन्द्रप्रभ

'जवाहरलाल नेहरू अपनी माउंट आबू की यात्रा के दौरान एक जगह से गुजर रहे थे, तो एक बूढ़ी महिला पहाड़ की तलहटियों को पार करते हुए उस रास्ते पर पहुंची। पुलिसवालों ने उसे दूर धकेलना चाहा, मगर इसके बावजूद वह जैसे-तैसे रास्ते पर आ गई। नेहरू ने उसे देखा और अपनी गाड़ी रुकवाई। नेहरू ने पूछा-'बोलो मां, क्या बात है? क्या परेशानी है तुमको?' बूढ़ी महिला ने कहा-'मैंने सुना है कि नेहरू इस रास्ते से गुजरनेवाले हैं। मैं उससे पूछूंगी कि क्या यही आजादी है? वही महंगाई, वही सारा कुछ नजर आ रहा है। इससे ज्यादा तो आदमी ब्रिटिश जमाने में कहीं ज्यादा शांत था, कम अस्त-व्यस्त था।' इस तरह वह पंडित नेहरू को कोसने लगी, गालियां देने लगी। मगर नेहरू ने कहा-'मां! देश को यह आजादी मिली है कि देश का प्रधानमंत्री खुलेआम गालियां सुन रहा है। पहली आजादी अभिव्यक्ति की है। उस वक्त तो एक सैनिक के सामने भी कोई जबान नहीं खोल सकता था, लेकिन आज हर आदमी को अधिकार है कि वह राष्ट्र-प्रमुख के सामने अपनी छाती को चौड़ा कर चल सकता है। देश में यह परिवर्तन आया है।'

दुनिया में देश तो बहुतेरे हैं, लेकिन कोई देश ऐसा नहीं, जिसे हम भारत की तुलना में रख सकें। जब तुलसी ने राम की उपमा ढूंढ़नी चाही तो ध्यान चंद्रमा पर गया, पर लगा चंद्रमा तो कलंकित है; तो क्या राम सूरज जैसे हैं? नहीं, सूरज की रोशनी को आम आदमी बर्दाश्त नहीं कर सकता। राम की उपमा या भारत की तुलना में केवल भारत को ही रखा जा सकता है।

माना इस देश ने सिकंदर जैसे विश्व-विजेताओं को जन्म नहीं दिया; आइंस्टाइन जैसे वैज्ञानिकों को जन्म नहीं दिया, लेकिन जिनको जन्म इस देश ने दिया है, वह इस धरती का कोई भी देश नहीं दे पाया। यहां महावीर जैसे तीर्थंकर, गौतम जैसे बुद्ध, राम जैसे मर्यादा-पुरुषोत्तम और कृष्ण जैसे कर्मयोगी जनमे। आइंस्टाइन ने कई सत्यों का आविष्कार किया, लेकिन जो सत्य, प्रेरणा और मूल्य कृष्ण और राम दे गए; बुद्ध और महावीर दे गए, वह दुनिया के किसी भी हिस्से का इंसान नहीं दे पाया। अगर दुनिया में सफल हुए हैं, तो वह जीसस ही हुए हैं, लेकिन यह भी एक सत्य है कि वे स्वयं भारत आए थे। ऐसी मान्यता है कि कश्मीर के पहलगाम में जो जोशओ की समाधि है, वह और किसी की नहीं, जीसस की है। जिस यहूदी देश से जीसस आए थे, वहां तो पत्थर के बदले में पत्थर मारा जाता था। एक गाल पर कोई चांटा मारे, तो दूसरा गाल भी उसके आगे कर दो-यह प्रेरणा तो भारत ही दे सकता है। यही प्रेरणा लेकर जीसस लौटे। जीसस शब्द ही ईश्वर से पैदा हुआ है, इसलिए यहां का जगदीश यहूदियों का जीसस बन गया।

भारत किसी क्षेत्र-विशेष का नाम नहीं है। भारत अपने आप में एक विचार है। यह एक परंपरा, एक संस्कृति और प्रबल पुरुषार्थ है। भारत एक विचार होने के कारण ही यहां जन्मे हजारों-हजार मनीषियों ने सारी मानवता के कल्याण के लिए नए-नए सूत्र और नए-नए प्रयोग तलाशे। भारत की मनीषा ने हवाई-जहाज का आविष्कार नहीं किया, लेकिन मनुष्य के भीतर रहने वाली चेतना का विकास किया। भारत भले ही अपने बलबूते चंद्रलोक तक नहीं पहुंच पाया और वह व्यक्ति का स्वयं का सत्य है। यही कारण है कि भारत के पास राम की मर्यादा का विचार है; कृष्ण के कर्मयोग की परंपरा है; महावीर की अहिंसा के रूप में स्वतंत्रता का शंखनाद है और आम जनता से प्यार के लिए बुद्ध की करुणा है।

भारत अपने आप में प्रबल पुरुषार्थ का द्योतक है। स्वयं कृष्ण ने कहा कि भारत! तुम अगर सो गए, तो यह दुर्योधन तुम्हें कभी जीवित नहीं रहने देगा, इसलिए कुरुक्षेत्र का यह युद्ध अर्जुन और दुर्योधन के बीच नहीं, वरन् भारत और महाभारत के बीच है। महाभारत असत्य का, अधर्म का परिचायक है और भारत धर्म और सत्य का प्रतीक है। इसीलिए कहा गया कि अर्जुन! तुम्हीं सो गए, तो ये दुष्प्रवृत्तियों के दु:शासन, दुश्चक्रों के दुर्योधन, स्वार्थ के शिशुपाल और शकुनि मिलकर इस देश को तहस-नहस कर देंगे।

अब भारत को जगना होगा। जन्म-जन्म से, युग-युग से असत्, अधर्म, तमस् हमें परास्त करता रहा है। कंस आया तो भगवान कृष्ण ने अवतार लिया; रावण आया तो राम ने अवतार लिया, मगर अब तो भारत को ही जगना होगा। मनुष्य-मनुष्य में अंतर्निहित भारत को जगना होगा। किसी का घर उजड़ते देखकर या किसी की अस्मिता लुटती देखकर हमें ही आगे आना होगा। हालांकि आज की नारी सक्षम है। उसे खुले आम बोलने का हक है। नारी का आज जितना विकास और स्वातंत्र्य हुआ है, धरती के संपूर्ण इतिहास में इतना कभी नहीं हुआ होगा। इतिहास साक्षी है कि किसी वक्त एक आदमी के बीस-बीस पत्नियां हो सकती थीं, एक स्त्री के किसी वक्त पांच-पांच पति हो सकते थे, मगर आज ऐसा नहीं हो सकता। आज स्त्री अपने स्वाभिमान और गौरव को बरकरार रख सकती है।

जमाना बदल गया है। समय का कायाकल्प हुआ है। परिवर्तन और परिमार्जन हुआ है। अगर कहीं उत्थान हुआ है, तो वह मुबारकबाद देने जैसा है और कहीं गिरावट आई है, तो वह भी समझने जैसी है। जिस महावीर ने दुनिया के सामने अस्पृश्यता के निवारण का संदेश दिया; जिस महावीर के समवसरण में रोहिणीक जैसा चोर और अर्जुन जैसा डाकू भी सम्मान-सहित आया करता था, जिस बुद्ध की सभा में अंगुलीमाल जैसे डाकुओं का भी स्वागत होता था, आज उन्हीं सत्पुरुषों के विचारों की पुनर्स्थापना हुई है। आज भारत का राष्ट्रपति केरल के एक साधारण हरिजन-परिवार में जन्मा व्यक्ति हो सकता है तो प्रधानमंत्री वह शरणार्थी, जिसे कभी रेलवे प्लेटफार्म पर भी सोना पड़ा। समय ने करवट बदली है, यहां परिवर्तन आया है।

भारत के पास वह विरासत है कि यहां मां-बाप की इच्छा हो जाए, तो बेटा उन्हें कावड़ में बिठाकर सारे हिंदुस्तान की यात्रा करवाने को निकल पड़ता है। भारत के पास वह गौरव है कि एक पिता किसी को वचन दे दे, तो उसकी पालना के लिए पुत्र स्वयं वनवास स्वीकार कर लेता है। इतना ही नहीं, एकमात्र भारत के पास यह गरिमा है कि एक भाई, भाई के सुख के लिए वनवास में रहता है, तो दूसरा भाई राजमहल में रहकर भी वनवास का जीवन बिताता है। भारत ने ऐसी ही पुण्यात्माओं को संत कहा है। ऐसी मर्यादा, त्याग, सहिष्णुता अन्यत्र दुर्लभ है। यही कारण है कि राम चाहे सैकड़ों-हजारों साल पहले हुए; रामायण' की रचना को बरस बीते, लेकिन वे जन-जन में आज भी पूज्य हैं, श्रद्धेय हैं।

भारत के इतिहास में काले पन्ने मौजूद हैं, तो उज्ज्वल अध्याय भी अशेष हैं। आज एक हिंदू को मसजिद में और मुसलमान को मंदिर में जाने का अधिकार है। लेकिन एक समय अशोक जैसा सम्राट भी हुआ है, जो स्वयं जन्मजात हिन्दू होते हुए भी बौद्ध धर्म का अनुयायी हुआ। अशोक के दादा जैन रहे। मनुष्य को यह पूरा-पूरा अधिकार होता था कि वह जिस धर्म को चाहे स्वीकार कर सकता था। तब जन्म से कोई जैन या हिन्दू नहीं होता था वरन् धर्म के आधार समझ, कर्म और गुण थे।

मुझे याद है—एक व्यक्ति कोढ़ से घिरा हुआ था। चमड़ी पर झुर्रियां पड़ गई थीं। जगह-जगह से रक्त-मवाद बह रहा था। घावों पर मक्खियां भिनभिना रही थीं। वह व्यक्ति जब किसी मंदिर की दहलीज पर पहुंचा, तो पुजारी ने उसे रोक दिया और कहा—तुम कोढ़ी हो, इसलिए तुम्हें मंदिर में जाने की अनुमति नहीं है। बूढ़े ने कहा—'पुजारी! मुझे मत रोको। ये मंदिर पुण्यात्माओं के लिए नहीं, हम जैसे पापियों के लिए ही हैं। पुण्यात्मा तो अपने पाप हर कहीं जाकर धो लेगा, लेकिन हम पापी आदमी कहां जाएंगे?' अब तो मंदिर हर किसी के लिए खुले हैं। यह भारत के लिए सुखद स्थिति है।

मानता हूं, आज भी हिंदुस्तान में सांप्रदायिकता की बात होती है; सांप्रदायिक तनाव बढ़ता है, लेकिन अब उतना नहीं लड़ते जितनी लड़ाई पहले होती थी। अब दंगे होते हैं, तो दो-चार मरते हैं और उस समय लड़ाइयां होती थीं, तो हजारों-हजार, लाखों-लाख मरते थे। समय बहुत उदार हुआ है; समय के साथ बहुत समझ आई है। यहां बौद्धिकता पनपी है। भारत में अब ऐसे-ऐसे मंदिर बने हैं, जिनको कि नेहरू ने भारत का तीर्थ' कहा है—कल-कारखाने, उद्योग-धंधे, पुल, जहाज, अत्याधुनिक तकनीक से सुसज्जित उपकरण—ये सभी उन्नत भारत की तसवीर के कुछ रंग हैं। अगर आज हमें पीड़ा पहुंचती है और कहना पड़ता है कि अब भारत को जगना होगा, तो वह इसलिए कि भारत में विकास तो बहुत हुआ, स्वतंत्रता तो बहुत मिली, मगर फिर भी कुछ खालीपन है। बहुत कुछ पाकर भी बहुत सारा पाना शेष है।

भारत की इस धरा पर राम का नाम तो लिया जाता है, मगर राम की मर्यादा चली गई है। कृष्ण की पूजा तो अब भी जारी है, मगर कृष्ण का कर्मयोग छूट गया है। आदमी में निकम्मापन आ गया है। व्यक्ति भले ही माल की चोरी न करता हो, मगर कामचोर जरूर है। हमारे पास महावीर की अहिंसा का नारा तो है, मगर मन में हिंसा का तांडव मिटा नहीं है। महावीर द्वारा साम्यवाद की शुरुआत अवश्य हुई, लेकिन आज भी अमीरी और गरीबी की भेद-रेखाएं मौजूद हैं। अगर यहां मिटी हैं, तो नैतिकता मिटी है और बढ़ा है, तो भ्रष्टाचार बढ़ा है।

आज भारत की मूल समस्या सांप्रदायिकता या जातीयता नहीं है, वरन् अकर्मण्यता और भ्रष्टाचार है। एक दिन मैं एक सभा में पहुंचा। वहां परिसंवाद का विषय था—भाईचारा और सांप्रदायिक सौहार्द। लोग सांप्रदायिकता को बड़ा कोस रहे थे। मुझे लगा कि भारत की प्रमुख समस्या सांप्रदायिकता नहीं है। संप्रदायों ने तो लोगों को बांध रखा है, उससे कहीं ज्यादा वैचारिक उदारता आई है। क्या यह हमारे लिए कम उदारता की बात है कि रेलवे स्टेशन पर कोई हरिजन पानी पिला रहा है और हम बिना हिचकिचाहट के पी रहे हैं!

मुझे पीड़ा है, क्योंकि यहां नैतिकता का पतन हो चुका है। न केवल मुझे पीड़ा है, वरन् किसी समय इसी पीड़ा ने कृष्ण को भी कचोटा था। महाभारत केवल इसलिए रचा गया था, क्योंकि अधर्म बढ़ गया था, नैतिकताओं का अवमूल्यन हो चुका था। यह आवश्यकता अनुभव की गई कि इस धरा पर पुनः संस्कृति के मूल्यों की प्रतिष्ठा हो, पुनर्स्थापना हो। युद्ध के लिए जब पूरा वातावरण बन गया और पार्थ फिसलने लगा तो भगवान श्रीकृष्ण प्रेरक बने। उन्होंने अर्जुन से कहा—'मेरे भारत, तू नपुंसकता को प्राप्त मत

हो। अपने हृदय में जो तुच्छ दुर्बलता आ गई है, तू उस दुर्बलता को त्यागकर अपने कर्तव्य-कर्म के लिए आगे बढ़े।'

भारत की अपनी एक मर्यादा रही है कि वह पहले किसी पर आक्रमण नहीं करता, पर कोई भी देश उस पर आक्रमण करता है, तो वह आत्म-रक्षा के लिए सदा-सदा कटिबद्ध है। इस देश को अगर घास की रोटी भी खाने को मिले तो खाएगा, मगर हर कीमत पर अपने स्वाभिमान और स्वतंत्रता की रक्षा करेगा। इस भारत की नारी को अगर तलवार भी उठानी पड़ी, तब भी वह लक्ष्मीबाई बनकर तलवार उठाएगी। अगर अपने मालिक के पुत्र की रक्षा करनी पड़े और अपने पुत्र का बलिदान भी करना पड़े, तो वह पन्नाधाय बनकर भारत की अस्मिता बचाएगी। यह सब भारत की आत्मा है, इसीलिए मैंने कहा कि भारत अपने आप में एक विचार, एक गरिमा है।

इस देश में गाय की पूजा होती थी। जो आदमी घर पर दूध मांगने आ जाता था, उससे पैसा नहीं लिया जाता था, लेकिन आज तो यह अच्छा-खासा व्यवसाय हो गया है। आज तो यहां घी में भी चर्बी मिलाई जाती है। किसी समय यहां पर शरणागत पक्षी होता, तो उसकी रक्षा के लिए अपनी जंघा के मांस को काट-काटकर दे दिया जाता था और आज उसी देश में मछलियों को सुखा-सुखाकर पीसा जा रहा है। धनिया की चटनी की तरह अब तो तिलचट्टों की भी चटनियां बन रही हैं। यह गिरावट है। जहां इन सरकारी लोगों के द्वार पर मैगस्थनीज पहुंच जाता, तो चाणक्य यह निवेदन करता कि तुम अगर सरकारी काम से आए हो तो सरकारी कक्ष में बात होगी और निजी तौर पर आए हो, तो बात निजी दीए की रोशनी में होगी, ऐसा आदर्श! आज तो हर सत्ताधीश भ्रष्टाचार में आकंठ डूबा हुआ है।

जब तक आदमी के हाथ में सत्ता नहीं होती, हर आदमी भाषणों में चिल्ला-चिल्लाकर कहता है कि ईमान हमारा धर्म है मगर जैसे ही सत्ता आती है आदमी फिसल जाता है, सरकारें लुढ़क जाती हैं। शक्ति न आए, तब तक ठीक है, लेकिन जिस दिन शक्ति आ गई, आदमी का अपने नियंत्रण में रहना बहुत कठिन है। जब तक पैसा न था, खूब कहते थे कि भगवान मुझे पैसा दे, तो मैं बताऊं कि समाज की सेवा कैसे होती है? और जिस दिन पैसा आया, समाज से किनारा ही कर लिया। आंखों में केवल दो चीजें ही मूल्यवान हो गई हैं—चमड़ी और दमड़ी। आदमी को केवल गोरा रंग चाहिए, गुण को कौन देखता है? केवल पैसा चाहिए, परमेश्वर को कौन पूछता है? समाज में ईमान नहीं, पैसा पूजा जाता है। कोई यह सवाल नहीं करता कि यह पैसा कहां से आया? पैसा चाहे दुनिया भर के घोटालों को कर पाया या मछलियों को पीसकर, दुनिया के लिए पैसा, बस पैसा है।

आज कितने ही तरह के घोटाले पकड़े जा चुके हैं। हर घोटाले में पैसों का घोटाला ही छिपा हुआ है। माना कि चाहे कोई व्यक्ति जाति से जो कुछ भी है, उसे किसी भी प्रदेश या राष्ट्र का मुख्यमंत्री या प्रधानमंत्री होने का पूरा-पूरा हक है, किंतु सत्ता का शोषण करना, भ्रष्टाचार व घोटालों में लिप्त होना भारत की आत्मा पर कुठाराघात है; यह मानवता के समस्त मानदंडों की धज्जियां उड़ाना है। भारत ने जहां सारे विश्व को नैतिकता का निर्यात किया, आज उसी की नैतिकता पर प्रश्न-चिह्न लग रहे हैं। पैसा व सुख-साधन अवश्य बढ़े हैं, किंतु राम की मर्यादा व महावीर का संयम लुप्त हुआ है। सारा विश्व ध्यान और योग की ओर आकर्षित हो रहा है और एक हम हैं। जो बीमारियों से घिरे हैं। सांस्कृतिक और आध्यात्मिक सिद्धांतों से विश्व प्रेरित हो रहा है, लेकिन यह विडंबना है कि दीया तले अंधेरा है। भारत, जो विश्व-गुरु रहा है, आज हाशिए पर है।

देश में अपराधों में बढ़ोतरी हुई है। प्रशासनिक अव्यवस्थाएं हुई हैं। आम आदमी का उन पर विश्वास

भी डगमगाया है। निश्चय ही भारत के पास गौरव करने के लिए बहुत कुछ है और हर व्यक्ति को अपने भारतीय होने का गौरव होना ही चाहिए। भारतीयता का गौरव व्यक्ति के ईमान को, इसके सिद्धांत व कार्य-प्रणाली को गौरवशाली बनाएगा। अव्यवस्थाएं संभव है अतीत में भी रही हों, लेकिन अतीत ने हमें इतना अधिक कुछ दिया है कि भारत को और हजारों वर्षों तक के लिए उससे प्रेरित और पुरुषार्थशील किया जा सकता है। उसकी प्रेरणाओं से भारत का भाग्य संवारा जा सकता है।

आप सूर्योदय से पूर्व जगें, परमात्मा की प्रार्थना करें, योग-व्यायाम करें, आधा घंटा ही सही, ध्यान अवश्य करें। इससे हमारी मानसिक क्षमताएं बढ़ेंगी और हम शांत एवं सशक्त जीवन की ओर बढ़ेंगे। हम अपने जीवन और जीवन की कार्य-प्रणाली के बारे में चिंतन करें। उसे कैसे अधिक से अधिक मंगलमय और प्रगतिमय किया जा सकता है, इसके बारे में निरंतर मनन होना ही चाहिए। हमारी जीवन-ऊर्जा सदा ऊर्जस्वित रहे, हम कर्म-योगी हों, संयममय हमारा जीवन हो। हमारा चरित्र यथार्थ व आदर्श से जुड़ा हुआ हो। हमारा सबके साथ संबंध हो किंतु उसमें अहिंसा की आभा हो। भाषा का व्यवहार हो, किंतु उसके साथ सत्य की सुरक्षा हो। व्यापार परिपूर्ण हो किंतु चोरी-चकारी और मिलावट से परहेज रखें। समाज के बीच दृष्टि की पवित्रता और ब्रह्मचर्य का निर्वहन हो। हम उदारता रखें, औरों का ध्यान रखें, हम एक-दूसरे के काम आएं, हृदय का तल सदा निर्झरित रहे, आनंदित व करुणाशील रहे। भारत जगे, भारत की आत्मा जगे। जंग उतरे और सम्यक् चिंतन, सम्यक् श्रम और सम्यक् सद्व्यवहार के जरीए भारत, स्वर्ण-भारत हो जाए।

मानव-मन में सुषुप्त कृष्ण का कर्मयोग जगे, महावीर का संयम जगे, बुद्ध की करुणा पनपे। भारत स्वर्ग हो, मानव-मानव में निहित भारत जगे, जीवन-भारती सशक्त हो, मुक्त हो।

भारत में नैतिकता को फिर से स्थापित करने के लिए सबसे पहले दृढ़ इच्छा-शक्ति चाहिए। एक गहरा आत्मविश्वास चाहिए। एक विदेशी आदमी के हाथ में भाग्य-रेखा कितनी भी बुरी क्यों न हो, मगर आत्मविश्वास की रेखा बहुत गहरी होती है। जबकि हममें आत्मविश्वास की ही सख्त दरकार है। इच्छा-शक्ति अगर दृढ़ है, तो किसी विशाल सेना को भी हराया जा सकता है, विशाल पर्वतों को भी हटाया जा सकता है।

धार्मिक आदमी जग जाए, अधार्मिक आदमी सो जाए। अगर अधार्मिक आदमी जग गया; अगर कंस, नादिरशाह, तैमूर लंग, स्टालिन और हिटलर जग गया तो चारों ओर तबाही मचेगी, खून की होलियां खेली जाएंगी, फिर कोई अशोक कलिंग पर चढ़ आएगा। कभी निकोलाई चाउशेक द्वारा रोमानियाई मारे जाएंगे, तो कभी हिटलर के द्वारा यहूदियों की हत्याएं होंगी। अधार्मिक आदमी के पास सत्ता आएगी तो सत्ता का दुरुपयोग ही होगा। गांधी जैसे धार्मिक आदमी के पास सत्ता आ भी गई, तो वे पहले ही पृष्ठभूमि में चले जाएंगे; कह देंगे कि मुझे सत्ता नहीं, स्वतंत्रता चाहिए थी, जो मिल गई। एक संघपति वह कहलाता है, जो संघ का अधिपति बनता है और एक संघपति वह कहलाता है, जो संघ को अपना अधिपति मानता है। जो अपने आपको हाशिए पर रखने का हौसला रखते हैं, वे ही देश और समाज में सदा अग्रणी बनते हैं।

हर भारतवासी का ध्येय होना चाहिए कि नैतिकता की पुनर्स्थापना हो, धार्मिकता का वर्चस्व कायम हो। इस ध्येय की उपलब्धि के लिए जरूरी है कि हम में दृढ़ इच्छा-शक्ति का विकास हो, लक्ष्य के प्रति हमारी स्थिरता बने और प्रबल पुरुषार्थ के प्रति निष्ठा जगे। यदि ये तीन सूत्र व्यक्ति अपने जीवन में आचरित कर लेता है, तो फिर यह कहने की आवश्यकता शेष नहीं रहेगी कि अब भारत को जगना होगा। ❐

महिला-विकास : समाज-विकास

गुरुदेव तुलसी

महिला समाज का एक अविच्छिन्न अंग है। सामाजिक विकास की परिपूर्णता के लिए महिला जाति का विकास एक अनिवार्य अपेक्षा है। जिस समाज में महिलाओं का सर्वांगीण विकास नहीं होता, वहां शेष समाज का विकास भी मात्र एक कल्पना बनकर रह जाता है। जिन-जिन व्यक्तियों और संस्थाओं ने इस तथ्य को पकड़ा, उन्होंने महिला-जाति को विकसित होने में अपना योगदान दिया। पिछले कई वर्षों से हमारा ध्यान इस बिंदु पर केंद्रित है। इस दृष्टि से हमने अनेक दिशाओं में प्रयत्न किए। जिस दिशा में प्रयत्न हुआ, उसमें हमें सफलता भी मिली, किंतु मनस्तोष नहीं मिला। इस बात को इस भाषा में भी कहा जा सकता है कि अभी तक अपेक्षित विकास नहीं हुआ।

प्रश्न हो सकता है कि महिलाओं के विकास की अवधारणा क्या है? उनको किस दिशा में विकसित करना है? उनके विकास का आदि बिंदु और अंतिम बिंदु क्या है? उनमें विकास की क्या-क्या संभावनाएं हैं? उनके विकास के लिए कौन-सा प्रयत्न सफल हो सकता है? इन सब प्रश्नों के परिप्रेक्ष्य में एक निश्चित रूपरेखा बना ली जाए, तो विषय स्पष्ट हो सकता है। प्रारंभिक रूप में उसके कुछ बिंदु ये हो सकते हैं—

- स्वत्व की पहचान
- मौलिक चिंतन की क्षमता
- आदर्श चरित्र का निर्माण
- लक्ष्य-निर्धारण की क्षमता
- जागरूक श्रद्धा का विकास
- सांस्कृतिक मूल्यों का विस्तार

स्वत्व की पहचान

स्त्री और पुरुष में दैहिक संरचना के अतिरिक्त और कोई बड़ा अंतर प्रतीत नहीं होता। फिर भी कई दृष्टियों से स्त्री को दुर्बल माना जाता है। कन्या के जन्म के साथ ही कुछ ऐसी बातें प्रचलित हो जाती हैं जो उसके कोमल मस्तिष्कीय तंतुओं को प्रभावित कर लेती हैं। लड़के और लड़की के खान-पान, रहन-सहन, मूल्य-मानकों में एक स्वाभाविक अंतर उभार दिया जाता है, जो लड़की के व्यक्तित्व निर्माण की दृष्टि से बड़ा घातक सिद्ध होता है। कुंठित और उपेक्षित परिवेश में पलने के कारण उसे अपने स्वत्व की पहचान ही नहीं हो पाती। नारी जाति के विकास का प्रथम बिंदु यह होना चाहिए कि वह समाज में अपनी अच्छी पहचान बनाए।

लक्ष्य-निर्धारण की क्षमता

स्वस्थ परिवेश में पली हुई महिलाएं हीनभावना से आक्रांत तो नहीं होती, पर वे अपने बारे में कोई निर्णय नहीं ले सकती। उन्हें अपने अभिभावकों की इच्छा से ही भविष्य की दिशा मिलती है। अभिभावकों द्वारा लक्ष्य निर्धारण की छूट मिलने पर भी वे प्राय: उतना साहस नहीं कर सकतीं। ऐसी स्थिति में अनेक योग्य प्रतिभाओं का सही उपयोग नहीं हो सकता। इस दृष्टि से कन्याओं को प्रारंभ से ही ऐसा प्रशिक्षण और वातावरण देने की अपेक्षा है, जो उनकी विवेक चेतना को जागृत कर उन्हें लक्ष्य-निर्धारण की क्षमता दे सके।

मौलिक चिंतन की क्षमता

चिंतन की स्वतंत्रता व्यक्तित्व-विकास का महत्त्वपूर्ण अंग है। जो व्यक्ति या वर्ग स्वतंत्र रूप से चिंतन नहीं कर सकता, वह कोई उल्लेखनीय कार्य नहीं कर सकता। महिला समाज में अनुकरण की शक्ति है, पर मौलिक चिंतन का विकास नहीं है। इसीलिए उनके विकास की दृष्टि से पुरुषों द्वारा आवाज उठाई गई। मौलिक चिंतन की क्षमता बढ़ाने के लिए हर महिला का साक्षर होना जरूरी है। साक्षरता की सीमा में पढ़ना, लिखना और समझना—ये तीनों बातें सम्मिलित हैं।

जागरूक श्रद्धा का विकास

श्रद्धा नारी का सहज धर्म है, पर वह रूढ़ न बने। इस दृष्टि से मैं बहनों को एक सूत्र देना चाहता हूं कि उनमें आस्था हो, अंधविश्वास न हो। आस्था में बहुत बड़ी शक्ति है, पर उसका उपयोग तभी हो सकता है, जब वह ज्ञानमूलक हो, जागृतिमूलक हो। महिला समाज में व्याप्त अंधविश्वासों और कुरीतियों पर उनकी सटीक टिप्पणियां तथा विशेष अभियान उनके श्रद्धाबल को अधिक सुदृढ़ बना सकते हैं।

आदर्श चरित्र का निर्माण

महिलाओं का आचरण परिवार और समाज के लिए आदर्श हो, इस दृष्टि से उन्हें आडंबर, प्रदर्शन और अनुकरण वृत्ति को छोड़कर जीवन के प्रति सजगता बरतनी होगी। अनर्थ हिंसा और अपव्यय से बचने के लिए प्रसाधन-सामग्री के उपयोग में संयम करना होगा। संग्रहवृत्ति की व्यर्थता को समझकर अनासक्त जीवन जीने का अभ्यास करना होगा। श्रम और समय का मूल्यांकन कर जीवन में श्रम को प्रतिष्ठापित करना होगा। व्यक्तित्व-विकास के लिए स्वतंत्रता का उपयोग करने पर भी स्वच्छंदता से बचना होगा।

सांस्कृतिक मूल्यों का विस्तार

विकास का एक प्रमुख अंग है संस्कृति। मानव-संस्कृति एक और अविभाज्य है। उसमें संस्कृति की गरिमा भारतीय लोक-जीवन को उच्चता प्रदान करने वाली है। उसमें भी जैन संस्कृति का अपना मूल्य है। महिलाएं अपनी सांस्कृतिक धरोहर को सुरक्षित रखती हुई उन मूल्यों को विस्तार दें, जिनसे उनकी सांस्कृतिक चेतना परिष्कृत हो। इस दृष्टि से उन्हें जीवन के हर मोड़ पर जैन-संस्कार-विधि का प्रयोग कर एक उदाहरण प्रस्तुत करना चाहिए।

दायित्व के प्रति जागरूकता

महिलाओं पर युग चेतना के निर्माण का सबसे बड़ा दायित्व है। इस दायित्व को निभाने से पूर्व उन्हें अपने जीवन का समुचित निर्माण करना होगा, क्योंकि स्वयं निर्मित हुए बिना बच्चे को संस्कारी नहीं बनाया जा सकता। जो माताएं बच्चे के निर्माण का कार्य दूसरों के भरोसे छोड़ देती हैं, वे बहुत बड़ी भूल करती हैं। आधुनिक शिक्षा प्रणाली में तो उन बच्चों को स्कूल में प्रवेश ही नहीं मिलता, जिनका लालन-पालन 'आया' के द्वारा होता है। शिक्षा-शास्त्रियों का यह अनुभव है कि जो बच्चे अपनी मां की देख-रेख में नहीं रहते, वे आगे जाकर अच्छे प्रमाणित नहीं हो सकते।

आर्थिक परावलंबन से मुक्ति पाने के लिए महिलाओं द्वारा कार्यक्षेत्र में उतरने की बात से मैं

असहमत नहीं हूं, पर वहां भी दो बातों को ध्यान में रखना जरूरी है। पहली बात है चरित्र। आर्थिक स्वावलंबन के लिए चारित्रिक दुर्बलता की स्थिति किसी भी मूल्य पर वांछनीय नहीं हो सकती। इसी प्रकार पारिवारिक उपेक्षा के परिणाम भी अच्छे नहीं आए हैं। घर और परिवार के दायित्व का निर्वाह करती हुई महिलाएं अतिरिक्त समय का विशेष उपयोग करें तो कई प्रकार की समस्याओं का समाधान हो सकता है।

विकास में बाधाएं

महिला अपने परिवेश में अकेली नहीं है कि वह विकास के हर सोपान को पार कर आगे बढ़ती रहे। महिलाओं का यह तर्क गलत नहीं है, पर उन्हें समझना होगा कि पुरुष भी तो अकेला नहीं है। वह कोई भी काम कर सकता है, तो महिलाएं क्यों नहीं कर सकतीं? महिलाओं की शक्ति में मुझे संदेह नहीं है, पर उन्हें कुछ सहयोग की अपेक्षा है। पहली बात तो यह है कि उन्हें पुरुष का जैसा सहयोग मिलना चाहिए वैसा न मिले तो वे पूरा काम नहीं कर सकतीं। माता-पिता और सास-ससुर का असहयोग भी विकास में बाधा उपस्थित करता है। सबसे बड़ी बाधा है सामाजिक मूल्य-मानकों की। मानदंडों में कुछ परिवर्तन हुआ है, पर अभी बहुत बदलाव की अपेक्षा है। उचित मार्गदर्शन का अभाव भी एक बाधा है। इन सबके साथ कुछ बाधाएं नैसर्गिक हैं। इन सब बाधाओं को पार करने के लिए दृढ़-संकल्प के साथ उस दिशा में गति की जाए तो प्रगति का पथ प्रशस्त हो सकता है।

महिलाओं से अपेक्षा

मैं महिलाओं का एक ऐसा वर्ग देखना चाहता हूं, जो महिला समाज के लिए उदाहरण हो, आदर्श हो। इसके लिए प्रबुद्ध, विवेकशील और जीवनदानी महिलाओं के समन्वित योग की अपेक्षा है। मैं अपेक्षा करता हूं कि पद, प्रतिष्ठा और नाम की भावना से दूर रहकर महिलाएं अपनी क्षमता का उपयोग करें और अपनी विशिष्टता से अन्य वर्गों का भी पथ-प्रदर्शन करें।

अब अपेक्षा इस बात की है कि महिला जाति की उपेक्षा, अवहेलना, प्रताड़ना और उसके विकास में आनेवाली बाधाओं का संगठित रूप से प्रतिकार किया जाए। इसके लिए सबसे पहले महिला अपनी क्षमता का बोध करें, स्वाभिमान को जागृत करें, युगीन समस्याओं को समझें, समस्याओं को समाज के सामने रखें, उन्हें दूर करने के लिए सामूहिक आवाज उठाएं और आगे बढ़ने के लिए स्वयं अपना रास्ता बनाएं। यह काम करने के लिए कुछ महिलाओं या महिला संगठनों को आगे आना होगा, क्योंकि उनके पांव खींचने का अपराध केवल पुरुषों ने ही नहीं किया है, संस्कारहीन अथवा परंपरावादी महिलाओं ने भी इसमें कहीं कोई कसर नहीं रखी है, बल्कि यह कहना चाहिए कि महिलाओं ने महिला जाति का शोषण जिस ढंग से किया है, किसी ने भी नहीं किया। उभयमुखी शोषण ने उसको इतना दबा दिया कि वह कुछ कर सकने का एहसास ही खोने लगी।

उन परिस्थितियों में भी भगवान महावीर ने नारी जाति के प्रति उदार दृष्टिकोण रखा और उसे हर प्रकार से उठने का मौका दिया। उनकी तुलना में तो हम कुछ नहीं कर सकते। फिर भी हमने महिला जागरण का एक सपना देखा है और उसे पूरा करने के लिए पूरी कोशिश कर रहे हैं। हमें पूरा भरोसा है कि इस कोशिश में हमें कामयाबी मिलेगी, क्योंकि अब महिलाओं का हौसला बढ़ रहा है। उनकी सोच की दिशा बदल रही है, उनके मन में कुछ करने की तड़प पैदा हो रही है और उनको बढ़ने का अवसर मिल रहा है। इस अवसर का उन्होंने उपयोग नहीं किया तो समय उनकी प्रतीक्षा नहीं करेगा।

बुद्धिवाद हावी न हो

शिक्षा के विकास ने महिलाओं की बौद्धिक चेतना के बंद दरवाजों को खोला है। वर्तमान युग में

बहनें किसी भी कार्यक्षेत्र में निर्भयता से उतरने का साहस अर्जित कर चुकी हैं। डेढ़ हाथ लंबे घूंघट में लिपटी रहनेवाली राजस्थान की महिलाएं भी एक सीमा तक काफी आगे बढ़ी हैं। समाज-सुधारमूलक प्रवृत्तियों के साथ-साथ वे व्यावसायिक और राजनीतिक क्षेत्र में भी पदन्यास करने की शक्ति जुटा रहीं हैं। बाह्य विकास के इन पहलुओं को मैं गलत नहीं मानता। फिर भी एक बात का ध्यान रखना बहुत जरूरी है कि कोरा बुद्धिवाद महिलाओं पर हावी न हो जाए। श्रद्धा के साथ-साथ बहती हुई तर्क की धाराएं जहां जीवन के धरातल को शस्य-श्यामल बना सकती है, वहां तर्कवाद की सूखी स्रोतस्विनी जीवन को नीरस और चिड़चिड़ा बना देती है।

परिवार की संभाल

महिलाओं का काम केवल भोजनालय या गृह व्यवस्था तक ही सीमित नहीं है। अपने समूचे परिवार को संस्कारी बनाकर उसे मानवीय मूल्यों के अनुरूप ढालना भी एक कुशल गृहिणी का दायित्व होता है। छोटे बच्चों को दुलार से, युवा सदस्यों को विवेक-जागरण से और बुजुर्गों को विनम्र व शालीन व्यवहार के द्वारा सत्संस्कारों से भावित करना पारिवारिक एकत्व, संगठन और सौहार्द की मूल भित्ति है।

मुझे आश्चर्य तब होता है जब शिक्षित माताएं अपने बच्चों को स्कूली शिक्षा के प्रति हर प्रकार से सजग करती हैं और यथासंभव स्वयं भी बैठकर पढ़ाती हैं, किंतु उन्हें नैतिक प्रशिक्षण देने के लिए बहनों को अवकाश नहीं होता। उनमें धार्मिक संस्कार भरने के लिए कोई तत्परता नहीं होती। ऐसा क्यों होता है? क्या मनुष्य का जीवन इतना छिछला और सतही है? क्या धार्मिक संस्कारों ने बौद्धिक चेतना को कुंठित किया है? क्या धर्म और अध्यात्म के प्रति उनका आस्थाभाव कम हुआ है? यदि ऐसा कुछ भी नहीं हुआ है तो यह एकपक्षीय उपेक्षा महिलाओं का कौन-सा हित संपादित कर सकेगी? उन्हें किस भूमिका पर ले जाकर छोड़ेगी?

प्रतिरोधात्मक शक्ति का विकास

नारी जीवन में प्रतिबिंबित असीम करुणा और मर्मांतक पीड़ा को भावप्रवण अभिव्यक्ति देना मेरा काम नहीं है, पर आज भी कुछ समाजों में उसकी जो स्थिति है, वह दयनीय और विचारणीय है। सब महिलाएं स्वयं इस स्थिति का अनुभव करती हैं या नहीं, मैं नहीं जानता, किंतु कोई भी प्रबुद्ध महिला अपनी जाति की दासता और हीनतामूलक वृत्तियों से खुश नहीं हो सकती।

शताब्दियों से चली आ रही अर्थहीन परंपराओं और आत्महीनता के मनोभावों को निरस्त करने के लिए प्रतिरोधात्मक चेतना का विकास करना नितांत अपेक्षित है। जब तक स्त्री की अन्याय के प्रति विद्रोही चेतना का जागरण नहीं होता, वह अपने अस्तित्व को सही रूप में नहीं समझ सकती। शरीर में जब तक रोग के कीटाणुओं को प्रतिहत करने की क्षमता रहती है, वह रोगाक्रांत नहीं होता, किंतु प्रतिरोधात्मक शक्ति के क्षीण होते ही चारों ओर से बीमारियों का आक्रमण होता है, जो शरीर को निस्तेज ही नहीं, खोखला बना देता है। इसलिए महिला समाज को अपनी प्रतिरोधात्मक शक्ति को विकसित कर जागृत जीवन जीने का अभ्यास करना है।

नारी का सहज सौंदर्य सादगी

पिछले दिनों 'धर्मयुग' पत्रिका पढ़ी। उसमें महिला जगत के लिए एक विशेष लेख था—'पशु-रक्त से सना यह सौंदर्य'। हिंसा के इस आयाम की प्रस्तुति में लेखिका ने उन रहस्यों का उद्घाटन किया है, जो सौंदर्य-प्रसाधनों के निर्माण की क्रूरतापूर्ण कहानी कह रहे हैं। मनुष्य अपने कृत्रिम सौंदर्य को निखारने के लिए पशु-पक्षियों की निर्मम हत्या को किस प्रकार बर्दाश्त कर सकता है, यह प्रश्नचिह्न मेरे अंत:करण को बेचैन बना रहा है।

कुछ वर्षों से पशु-पक्षियों की क्रूरतापूर्ण हिंसा के विरोध में कुछ व्यक्ति और संगठन सक्रिय हुए हैं। उन्होंने

कई पैंफलेट, फोल्डर आदि प्रकाशित कर वितरित किए हैं। उनके अनुसार मानवीय क्रूरता एवं फैशनपरस्ती के कारण एक सौ तीस प्रजाति के पशु पक्षी सदा के लिए विदा हो चुके हैं और दो सौ चालीस प्रजातियां समाप्ति के कगार पर खड़ी हैं। फैशन और प्रसाधन के लिए मनुष्य जिन बेजुबान निरीह प्राणियों को निर्मम प्रहार कर मार रहा है, उनमें कराकुल भेड़, कछुआ, गिनीपिग, स्लेंडर लोरिस नामक बंदर, बीवर, सांप, बिज्जू, खरगोश, रेशम का कीड़ा आदि उल्लेखनीय हैं।

अत्यंत कोमल रोएंदार खाल के कोट या टोपी बनाने की लालसा से मनुष्य मादा कराकुल भेड़ को मार, उसके पेट से मेमना निकाल जीवित अवस्था में उसकी खाल उतारता है। क्या ऐसे वस्त्र आदमी को शांति से जीने देंगे? कछुए के कोमल अंगों को सुखाकर कारखानों में विशिष्ट प्रकार का तेल निकाला जाता है। उस तेल से निर्मित प्रसाधन सामग्री मनुष्य का सौंदर्य बढ़ाती है। कछुओं की जान लेकर मिला सौंदर्य क्या मनुष्य की आत्मा के सौंदर्य को समाप्त नहीं कर देगा?

'आफ्टरशेव लोशन' का परीक्षण गिनीपिग की खाल खरोंचकर किया जाता है। बिज्जू को बेंतों से पीटकर तथा चाकू से उसकी ग्रंथि खरोंचकर तरल पदार्थ प्राप्त किया जाता है। उसकी सुगंध से सेंट बनता है। उस सेंट का प्रयोग करनेवालों को जानवरों की हत्या की दुर्गंध कैसे नहीं आती होगी?

स्लेंडर लोरिस बंदर की आंखों और दिल को पीसकर प्रसाधन सामग्री बनाई जाती है। बीवर के तेल का उपयोग इसी काम में होता है। उसकी खाल से कोट बनते हैं। जीवित सांपों की खाल खींचकर उनसे बैग बनाए जाते हैं। शैम्पू का परीक्षण खरगोशों की आंखें छीनकर किया जाता है। रेशम के कीड़ों को खौलते हुए गरम पानी में डालकर जिस क्रूरता से मारा जाता है, क्या उसका संबंध रेशम पहननेवालों से नहीं है?

इस संदर्भ में मैं बहनों का ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट करना चाहता हूं, उनकी सहज करुणा अज्ञानवश ऐसे पाशविक कर्म को प्रोत्साहन देती रहे, यह एक चिंतनीय पहलू है। जब हिंसा और क्रूरता के बिना निर्मित होनेवाली प्रसाधन सामग्री उपलब्ध हो सकती हो, वैसी स्थिति में पशु-रक्त से सना यह सौंदर्य आपको क्या सुख दे सकेगा?

प्रकृति ने स्त्री को सहज सौंदर्य और कोमलता का वरदान दिया है। फिर भी वह अतिरिक्त रूप से सुंदर दीखना चाहती है। इसके लिए वह फैशनेबुल वस्त्रों, आभूषणों और सौंदर्य प्रसाधनों का उपयोग करती रही हैं। प्राचीनकाल की स्त्री में भी यह मनोवृत्ति थी, पर उस समय प्रसाधन सामग्री के रूप में देशी उबटनों अथवा घरेलू वस्तुओं को काम में लिया जाता था। वर्तमान में कुछ सौंदर्य प्रसाधनों का निर्माण जिस क्रूरता से होता है, देखने-सुननेवालों के मन प्रकंपित हो जाते हैं। भारतवर्ष की धर्मपरायण स्त्रियां भी ऐसी क्रूर हिंसाजनित प्रसाधन सामग्री के विरोध में आवाज नहीं उठाएंगी तो हजारों-लाखों मासूम प्राणी मौत के घाट उतरते रहेंगे।

पशु-हत्या की इस थोड़ी सी चर्चा से जाना जा सकता है कि मनुष्य कितना क्रूर होता जा रहा है। फैशन और प्रसाधन सामग्री का संबंध पुरुष और स्त्री दोनों के साथ है। फिर भी इसका अधिक लगाव स्त्री से माना जाता है। व्यापक क्षेत्र में काम करनेवाली प्रबुद्ध और करुणाशील स्त्रियों का यह नैतिक दायित्व है कि वे स्वयं तो ऐसी सामग्री का उपयोग करें ही नहीं, इस दृष्टि से संपूर्ण महिला समाज को जागृत करें, तो एक नई क्रांति घटित हो सकती है।

मैं मानता हूं कि आपके लिए सबसे बड़ा सौंदर्य है—सादगी और सात्त्विक जीवन। एक गृहस्थ अपरिहार्य हिंसा से अपना बचाव नहीं कर सकता, किंतु आमोद-प्रमोद, मन बहलाव और सौंदर्य-प्रसाधन के निमित्त होनेवाली अनर्थ हिंसा से तो बचा ही जा

सकता है। इस क्षेत्र में सही दृष्टिकोण निर्मित हो सके, तो जीवन में सात्विकता का सहज अवतरण हो सकता है।

दुर्बलताओं के साथ संघर्ष

पिछले कुछ वर्षों से महिलाएं अपने अधिकारों के प्रति सजग हो रही हैं और उनकी प्राप्ति के लिए वे संघर्ष करने के लिए भी आमादा हो चुकी हैं। मैं सोचता हूं कि अधिकार की मांग और प्राप्ति से विकास नहीं हो सकता। विकास का द्वार है अपनी क्षमताओं का विकास और प्राप्त अधिकारों का समुचित उपयोग। अधिकार प्राप्ति के लिए संघर्ष की स्थिति तो और भी चिंताजनक है। यद्यपि इस स्थिति का निर्माण अभी तक अपने देश में नहीं हुआ है, किंतु अनुकरण-प्रिय भारतीय जनता किस समय कौन-सी करवट ले ले, कुछ कहा नहीं जा सकता।

मैं बहनों को सुझाना चाहता हूं कि यदि उन्हें संघर्ष ही करना है, तो वे अपनी दुर्बलताओं के साथ संघर्ष करें। ईर्ष्या, असहनशीलता, अंधानुकरण की वृत्ति, अर्थहीन रूढ़ियों को निभाते रहने का मनोभाव आदि दुर्बलताओं के साथ लड़कर इन्हें पराजित करें, समाज की आध्यात्मिक, धार्मिक और सामाजिक चेतना को जागृत करके ही महिलाएं अपने दायित्व का निर्वाह कर सकती हैं।

जरूरत है जीवनशैली को बदलने की

अपने घर में अनेक महत्त्वपूर्ण दायित्वों का निर्वाह करनेवाली स्त्री घर से बाहर के कार्यक्षेत्रों में कमजोर साबित होगी, ऐसा मैं नहीं मानता। फिर भी मैं उसे परामर्श देना चाहूंगा कि व्यापक क्षेत्र में पांव रखने से पहले स्त्री को यह सोचना चाहिए कि उसके लिए अनिवार्य रूप से करणीय काम कौन से हैं? जिन कामों को स्त्री ही कर सकती है, उनके प्रति ध्यान केंद्रित किया जाए, तो उसके परिणाम अधिक सार्थक हो सकते हैं। जैनेंद्रजी कहा करते थे कि स्त्री पुरुषार्थ की बात क्यों सोचे? उसके लिए तो स्थैर्य ही बहुत बड़ा है। उनके इस कथन का तात्पर्य भी यही हो सकता है कि स्त्री को पुरुष की देखादेखी क्यों करनी चाहिए और पुरुष को स्त्री की देखादेखी क्यों करनी चाहिए? परिवार और समाज की अपेक्षाओं को ध्यान में रखकर पूरी गंभीरता और शालीनता के साथ स्त्री अपने कार्यक्षेत्र में प्रवेश करे, तो लाभ की अधिक संभावनाएं हैं।

शिक्षा स्त्री के लिए बहुत आवश्यक है, पर शिक्षा की ओट में आभिजात्य संस्कारों का अतिक्रमण वांछनीय नहीं हो सकता है। आर्थिक स्वावलंबन स्त्री की अस्मिता को स्वतंत्र पहचान देने में सहायक बनता है, किंतु चरित्र की कीमत पर मिलनेवाला आर्थिक स्वावलंबन घोर पतन का रास्ता है। इसी प्रकार बच्चों की उपेक्षा और बड़े-बुजुर्गों की अवहेलना के परिणाम भी सुखद नहीं हो सकते।

अर्थहीन परंपराओं और अंधविश्वासों की पकड़ स्त्री के विकास में बाधक है, यह सच है, पर इसका अर्थ यह नहीं है कि प्रगतिशीलता के नाम पर परंपरा मात्र को उखाड़कर फेंक दिया जाए। आधुनिक कहलाने के व्यामोह में समाज और परिवार की शालीन परंपराओं से आंख मूंदना अपने पांवों पर कुल्हाड़ी चलाना है। समाज की एक सर्वमान्य परंपरा के अनुसार आभिजात्य परिवारों में स्त्री के लिए पर-पुरुष का स्पर्श भी वर्जित था। यह परंपरा सतीत्व के लिए सुदृढ़ सुरक्षा कवच का काम करती थी। आज तो क्लब-कल्चर प्रभावी बन रहा है, उसमें स्त्री-पुरुष के युगल स्व और पर की मर्यादा को भूलकर एक-दूसरे का मनोरंजन करते हैं, अपने साथियों का परिवर्तन कर नाचते हैं। जो लोग अधिक उन्मुक्त हो जाते हैं, वे यौन संबंधों में भी एक-दूसरे की भागीदारी स्वीकार कर लेते हैं। भारतीय संस्कृति के पवित्र माथे पर यह एक ऐसा धब्बा है जिसे छुड़ाने के लिए पूरी जीवनशैली को बदलने की अपेक्षा है। ❐

घेरों में पलती जिन्दगी

साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा

एक लड़की प्रातराश करने आई। मनचाहा नाश्ता नहीं मिला। वह उठकर चली गई और अपने कमरे में जाकर सो गई। परिवार में कई लोग थे। किसी ने उससे पूछा तक नहीं कि वह नाश्ते की मेज पर आकर भी यों ही क्यों लौट आई? औरों की बात छोड़ें, उसकी मां में भी हिम्मत नहीं थी कि वह अपनी लाडली बेटी से उसके रूठने का कारण पूछे। ऐसी हरकत के लिए डांटने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। भय इस बात का है कि डांट सहन न कर पाने के कारण लड़की कोई गलत कदम न उठा ले।

मनुष्य सुख की कामना करता है। वह शांति से जीना चाहता है। उसकी दिनचर्या में किसी प्रकार की बाधा आए, यह उसे अभीष्ट नहीं है। आज का आदमी प्रबुद्ध है। वह अपने हित-अहित को समझता हैं। 'परहित सरिस धर्म नहिं भाई।' ऐसी अवधारणाओं में जीनेवाला बुद्धू कहलाता है। स्वयं आधे पेट रहकर परिवार को पूरी रोटी खिलानेवालों को मूर्ख माना जाता है। परिवार की परिभाषाएं बदलती जा रही हैं। एक दादा या परदादा के नेतृत्व में सौ-पचास व्यक्तियों का सहवास भी कष्टपूर्ण बनता जा रहा है। पीढ़ियों का अंतराल सामंजस्य के सूत्र को तोड़ रहा है। ऐसी स्थिति में पारिवारिक जीवन की व्यथा-कथा कौन सुने और किसे सुनाए?

टूटती परंपराएं

अस्सी वर्ष की एक वृद्धा ने बड़ी उमंग से पोते की सगाई की। उसके मन में घर के आंगन में पतोहू के कदमों की आहट सुनने की उत्सुकता कम नहीं थी। पर वह जानती थी कि शादी में अभी चार महीने की देरी है। शादी से पहले बहू घर में आएगी, इसकी उसे कल्पना भी नहीं थी। उसकी आंखों में सजी-धजी, साड़ी या ओढ़नी से ढके सिर वाली, झुकी नजरों में आदर सहित चरण छूने वाली पतोहू का चित्र था। उसे आश्चर्य हुआ, जब एक दिन उसकी भावी पतोहू खुले सिर पोते के साथ घर में आई और इस प्रकार बातें करने लगीं, मानो वह वहीं रह रही हो।

लड़का ऑफिस में बैठा है। आसपास उसके पूज्य बुजुर्गों की कुर्सियां हैं। फोन की घंटी बजती है। वह रिसीवर उठा लेता है। उधर से किसी महिला का स्वर सुनाई देता है। पिता पूछते हैं–'बेटा! किसका फोन है?' बेटा गौरव के साथ कहता है–'पापा! स्वीटी बोल रही है।' स्वीटी कौन? उसकी होनेवाली पत्नी। पिता की आंखें शर्म से झुक जाती हैं। वह झुकी नजरों से इधर-उधर देखता है। यह जानने के लिए कि स्टॉफ के किसी व्यक्ति ने लड़के की बात सुनी तो नहीं। इधर लड़का दिन में दो-चार बार स्वीटी से बात करने में संकोच नहीं करता। संकोच किस बात का! आखिर वह उसकी होने वाली पत्नी जो है।

अभिभावकों के तीन वर्ग

आधुनिकता के बोध का गौरव किसमें है? परंपराओं की सुरक्षा में या कांच की तरह उनकी किरचें कर देने में? अर्थहीन रूढ़ परंपराओं का बोझ ढोने की सलाह न तो कोई समझदार आदमी दे सकता है और न कोई चिंतनशील व्यक्ति उसे स्वीकार कर सकता है। पर आधुनिकता की वकालत में परंपरा मात्र की जड़ खोद दी जाए, यह वांछनीय नहीं है। परंपराएं परिवार की हों, समाज की हों, राष्ट्र की हों या धर्म की, उनकी समीक्षा की जा सकती है, किंतु जब इनके प्रति अवहेलना का भाव उत्पन्न हो जाता है, तब व्यक्ति आयातित मूल्यों की चकाचौंध में अपने मूल से कट जाता है।

आज का युग परंपराओं के प्रति इतना विद्रोही क्यों हो रहा है? इस प्रश्न पर गंभीरता से सोचा जाए तो समस्या की डोर का एक छोर अभिभावकों से जुड़ा हुआ प्रतीत होता है। अभिभावकों को तीन श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है–

- सुख-सुविधाभोगी
- दायित्व की अनदेखी करनेवाले
- जीवन के प्रति सही दृष्टिकोण रखनेवाले

अलग-अलग घेरों में पलती जिन्दगी

प्रथम श्रेणी के माता-पिता अपने बच्चों को अपनी जिंदगी का अंतरंग हिस्सा नहीं बनाते। उनका जीवन अपने लिए होता है। बच्चों को वे अपनी प्राइवेसी में बाधक मानते हैं। इसलिए उन्हें समय भी कम देते हैं। ऐसे लोग आर्थिक दृष्टि से संपन्न होते हैं। वे अपने बच्चों की जायज या नाजायज मांगें पूरी कर देते हैं, पर जीवन के यथार्थ से उनको परिचित नहीं कराते। जीवन कैसे जीया जाता है? पारिवारिक रिश्तों में माधुर्य कैसे आता है? बड़ों के प्रति कर्तव्यों का निर्वाह कैसे होता है? छोटों को साथ लेकर चलने का तरीका क्या है? मित्रों और परिचितों के साथ कैसा व्यवहार होना चाहिए? बच्चों को ये संस्कार कहां से मिलेंगे? केवल अपनी अस्मिता के प्रति सचेत माता-पिता अपने बच्चों को न तो जीने का बोध दे सकते हैं और न ही उन्हें सामाजिक बना सकते हैं।

एक लड़की प्रातराश करने आई। मनचाहा नाश्ता नहीं मिला। वह उठकर चली गई और अपने कमरे में जाकर सो गई। परिवार में कई लोग थे। किसी ने उससे पूछा तक नहीं कि वह नाश्ते की मेज पर आकर भी यों ही क्यों लौट आई? औरों की बात छोड़ें, उसकी मां में भी हिम्मत नहीं थी कि वह अपनी लाडली बेटी से उसके रूठने का कारण पूछे। ऐसी हरकत के लिए डांटने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। भय इस बात का है कि डांट सहन न कर पाने के कारण लड़की कोई गलत कदम न उठा ले। लड़का हो या लड़की, इतनी असहिष्णुता की स्थिति में परिवार के साथ समरस होने की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

उपेक्षा का दंश भोगते बच्चे

अभिभावकों की अपनी कुछ मजबूरियां होती हैं। संतान की आकांक्षा करते समय अनेक माता-पिता को अपने दायित्व का बोध नहीं होता। कुछ व्यक्तियों को बोध होता है, पर उनकी परिस्थितियां इतनी अनुकूल नहीं होतीं कि वे बच्चों पर पर्याप्त

ध्यान दे सकें। मजबूरियों का संबंध पारिवारिक परिवेश से हो सकता है तथा आर्थिक परिस्थितियों से भी हो सकता है। कारण कुछ भी हो, बच्चों का कौन-सा अपराध है कि वे परिवार में उपेक्षित होकर रहें। बच्चों पर पर्याप्त ध्यान देने का अर्थ यह नहीं है कि उनकी अबाध इच्छाओं की तत्काल संपूर्ति हो। उन्हें गोद से नीचे ही न उतारा जाए और गलत काम करने पर उसका प्रतिकार न किया जाए।

बच्चों पर ध्यान देने का अर्थ है कि उनकी दिनचर्या और जीवनचर्या पर पूरी आंख रखना। बच्चे कब उठते हैं? कब सोते हैं? क्या खाते हैं और कब खाते हैं? उनकी उठक-बैठक किस तरह के बच्चों के साथ है? उनके स्कूल जाने और वहां से लौटकर आने का समय निश्चित है या नहीं? स्कूल के नाम पर घर से बाहर जाकर वे इधर-उधर निरुद्देश्य घूमते तो नहीं हैं? वे अपनी पुस्तकों और कपड़ों को कैसे रखते हैं? उनमें फिजूलखर्ची की वृत्ति तो नहीं है? झूठ बोलने और चोरी करने जैसी गलत आदतें तो नहीं हैं? किसी प्रकार का नशा करने की लत तो नहीं है? पारिवारिक सदस्यों के साथ उनका व्यवहार कैसा है? इस प्रकार की बहुत-सी बातें हो सकती है। प्रारंभ से ही इनके प्रति जागरूक रहा जाए तो बच्चों को जीवन की सही दिशा उपलब्ध हो सकती है, पर जो माता-पिता अपने दायित्व की अनदेखी कर देते हैं, वे बच्चों के साथ न्याय नहीं करते।

सर्वांगीण निर्माण की दिशा

जीवन को सही ढंग से देखने का नजरिया व्यक्ति को अपने लक्ष्य और दायित्व के प्रति सचेत रखता है। इस कोटि के व्यक्तियों की जीवनशैली व्यवस्थित होती है। वे न तो आधुनिकता से परहेज रखते हैं और न परंपराओं को व्यर्थ समझते हैं। अपने बुजुर्गों के प्रति उनके मन में आदर और श्रद्धा का भाव होता है। उनके चिंतन और परामर्श को वे महत्त्व देते हैं। परिवार के छोटे-बड़े सभी व्यक्ति साथ मिलकर बैठते हैं। सब एक दूसरे की सुविधा-असुविधा का ध्यान रखते हैं। परिवार का कोई सदस्य अच्छा काम करता है तो उसे प्रोत्साहन मिलता है। गलती करनेवाले को परिवार की अदालत के सामने उपस्थित होना पड़ता है। बच्चों, वृद्धों और बीमारों की पूरी देख-भाल होती है। व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए पारिवारिक हित को अनदेखा नहीं किया जाता।

बच्चा जन्म लेता है, तब संस्कार-सूत्र साथ लेकर आता है। फिर भी उसके निर्माण में पारिवारिक वातावरण का पूरा हाथ रहता है। स्वस्थ वातावरण उसे बेहतर भविष्य दे सकता है। इस दृष्टि से माता-पिता का दायित्व बढ़ जाता है। वे अपनी प्रवृत्तियों को संयत रखते हैं और बच्चों की गतिविधियों का ध्यान रखते हैं। उनमें विनम्रता, सहिष्णुता, करुणा, सेवा-भावना, प्रामाणिकता आदि जीवन-मूल्यों को विकसित करने का प्रयत्न करते हैं। ऐसे अभिभावक अपने बच्चों को सर्वांगीण व्यक्तित्व-निर्माण की दिशा दे सकते हैं।

पहले अभिभावकों का निर्माण जरूरी

युग की हवा के साथ बहनेवाले अभिभावकों के सामने कोई निश्चित लक्ष्य नहीं होता। लक्ष्य के अभाव में उनकी कोई दिशा नहीं होती। आज के संचार-साधन भी लक्ष्यहीनता में निमित्त बन रहे हैं। मनुष्य का मन इतना सुविधावादी है कि वह विश्व के किसी भी छोर में मिल रही सुविधा की चीज को पकड़ लेता है और जीवन के अंतरंग पक्ष को संवारनेवाले तत्त्वों की उपेक्षा कर देता है। जब तक बुनियादी काम नहीं होगा, ऊपर की बातों से स्वस्थ और आनंदमय जीवन के स्रोत उपलब्ध नहीं होंगे। किशोर पीढ़ी के बहकते हुए कदमों को सही दिशा और रास्ता दिखाने के लिए अभिभावकों को उनके सामने आदर्श प्रस्तुत करना होगा, अन्यथा आगे-से-आगे हर किशोर पीढ़ी एवं युवा पीढ़ी परिवार या मां-बाप के हाथ से निकलती जाएगी। उसके आधार पर बांधे गए मंसूबे एक-एक कर बिखर जाएंगे। मनुष्य सब कुछ पाकर भी भीतरी रिक्तता के संत्रास से छुटकारा नहीं पा सकेगा।

प्रेरक क्षणिकाएं

मुनि सुखलाल

सार्थकता

समीकरण ही कौशल है।
न जाने हवाएं कहां-कहां से भटकती आती हैं?
उनके साथ न जाने कैसी-कैसी गंदगी है?
धूप-दीप से अपने घर का वातावरण
शुद्ध बना लेना ही बुद्धिमानी है।
बाजार में न जाने कहां-कहां की
सब्जियां आती हैं?
कहां-कहां की गंदगी
उनकी जड़ों को सींचती है?
किस-किस मैल की रूपांतरित खाद
उनको पोषित करती है?
कौन-कौन से अपवित्र हाथ
उनकी सुरक्षा करते हैं?
उन्हें धो-पूंछ-संस्कारित कर
खाना ही चतुराई है।
इस या उसको सत्य कहना गलत है,
इस या उसको गलत कहना भी गलत है।
सत्य बस सत्य है।
सारे संज्ञा-संबोधन कल्पित हैं।
हर देश में सूर्योदय का अपना
अलग-अलग समय है,
अपनी घड़ियों का संतुलन
बनाये रखना ही धर्म है।
परंपराओं से बचा तो नहीं जा सकता
उन्हें वर्तमान के प्रकाश में
पढ़ना ही ज्ञान की सार्थकता है।

द्वैत-अद्वैत

कागज पर भले ही उग आए
क्षण भर में कोई नंदनवन
जमीन पर खड़े होने में वर्षों लगते हैं।
शब्दों में भले ही जन्म ले-ले
क्षण भर में कोई कविता
चेतना में जनमने में युग लग जाते हैं।
रंगों में भले ही उभर आये क्षण भर में कोई चित्र
चित्रकार से वह जन्म-जन्म से लिपटा है।
न जाने कहां-कहां का खाद
कहां-कहां की मिट्टी,
कहां-कहां का पानी
कहां-कहां की हवा,
कहां-कहां का प्रकाश
कहां-कहां की ऊर्जा,
पीकर खड़ा हुआ है यह व्यक्तित्व।
भले ही स्वर तुम्हारे कंठ से फूटा
इसमें सारा धरती-आकाश गूंजता है।
एक और दो का विभाजन मनुष्य-कृत है,
प्रकृति की पोथी में गणित का कोई पाठ नहीं।
सब कुछ बिखरा हुआ होकर भी जुड़ा हुआ है,
द्वैत का अस्तित्व अद्वैत है,
अद्वैत की व्याख्या द्वैत है।

होली का आध्यात्मिक रंग

आचार्य महाप्रज्ञ

हम भावों को रंगों के आधार पर और रंगों को भावों के आधार पर पहचान सकते हैं। कौन-सा रंग ज्यादा मात्रा में शरीर के आभामंडल में होता है तो आदमी का व्यवहार किस तरह का होता है। लेश्याएं आदमी के व्यवहार को बदल देती हैं। कभी-कभी इनकी सक्रियता के कारण अच्छे आदमी का व्यवहार भी बहुत बुरा हो जाता है। इसी तरह कभी-कभी बुरा आदमी भी अच्छा व्यवहार करता हुआ देखा जा सकता है। रंगों की अल्पता या बहुलता मनुष्य के स्वभाव में परिवर्तन का बहुत बड़ा कारण बनती हैं।

होली लौकिक उत्सवों में एक प्रमुख उत्सव है। वर्ष भर के तनाव को भूलने व मिटाने का यह सबसे अच्छा दिन है। इस दिन आदमी अपने सारे गम, सारी कठिनाइयां, परेशानियां, दैन्य, निराशा, हताशा–सबको एक किनारे कर हर्ष और उल्लास में खो जाता है। यह मस्ती का उत्सव है। उत्सव की खुशी और खुमारी में डूबा व्यक्ति जब घर में जाता है और अपने अभावों से उसका साक्षात्कार होता है तो फिर सारा राग वैराग्य में बदल जाता है। गृहस्थ जीवन की वास्तविकता उसे यथार्थ के धरातल पर ला खड़ा करती हैं तो उसकी सारी हंसी-खुशी काफूर हो जाती है।

मनुष्य की यह सहज स्वाभाविक प्रकृति है कि वह हमेशा दुःख से दूर रहना चाहता है। पर कैसे रहे? यह नहीं जानता। दो तरह के उपाय इस दुनिया में चलते हैं–अल्पकालिक और दीर्घकालिक। अल्पकालिक उपाय यह है कि सारी चिंताओं से कुछ देर के लिए मुक्त होकर ऐसी दुनिया में प्रवेश कर जाना, जहां स्वर्गिक आनंद की अनुभूति हो। कुछ लोग इस उपाय के अंतर्गत मादक द्रव्यों की शरण लेते हैं, क्लबों या थियेटरों में चले जाते हैं।

अभी मैंने युवकों को गाते हुए देखा। उनके चेहरों पर किसी भी प्रकार का तनाव या परेशानी नहीं थी। ऐसा नहीं कि उनमें से प्रत्येक व्यक्ति पूर्ण चिंतामुक्त और तनावमुक्त था। सबकी कुछ न.कुछ कठिनाइयां और दिक्कतें होती हैं। गृहस्थ जीवन में चाहे वह गरीब हो या छोटा आदमी, चाहे करोड़पति हो बड़ा आदमी, कुछ न कुछ कठिनाइयां सबके सामने रहती हैं। किंतु हंसी-खुशी और मस्ती के माहौल में आदमी के चेहरे से वह तनाव कुछ देर के लिए गायब हो जाता है। मैंने गाते-बजाते युवकों के चेहरों पर ऐसी ही प्रसन्नता देखी थी।

ये ही लोग जब जीवन के यथार्थ से रू-बरू होंगे, घर की परेशानियों से उनका सामना होगा तो पहले की तरह वह उदासी फिर इन चेहरों पर लौट आएगी। हमें अल्पकालिक सुख और दीर्घकालिक सुख दोनों पर विचार करना है, दीर्घकालिक सुख की दिशा में प्रस्थान करना है। एक-दो दिन के उत्सव से अल्पकालिक तृप्ति होगी। उस चीज को पाने से क्या फायदा, जो दो-चार दिन बाद फिर हाथ से निकल जाए। इस बात की कोशिश हो कि वह स्थाई रूप से हमारे पास रहे।

होली का उत्सव एक सचाई की ओर ले जाने वाला उत्सव है। रंगों से खेलना एक सचाई है। कीचड़ और गंदे पानी से खेलना एक प्रमाद था, जो धीरे-धीरे कम हो रहा है। रंगों से खेलने के पीछे एक बड़ा दर्शन है। रंग एक सिद्धांत है। इसे जैन परिभाषा में 'लेश्या' कहा गया है। योग और ऑकल्ट साइंस में उसे 'ओरा' या आभामंडल' कहा गया है।

हर व्यक्ति का अपना आभामंडल होता है। एक पशु का भी आभामंडल होता है, किंतु वह अच्छा नहीं होता। मनुष्य का आभामंडल उसे आध्यात्मिक दिशा में ले जानेवाला हो सकता है और उससे विपरीत दिशा में भी ले जानेवाला हो सकता है। शरीर जो दृश्यमान है, उसकी सारी स्थितियों को बतानेवाला सबसे बड़ा एक्स-रे कोई है तो वह आभामंडल है। एक्स-रे में भीतर का सारा फोटो आ जाता है। पता लग जाता है, कहां ठीक है, कहां गड़बड़ है? किंतु उसमें वही चित्र आता है जो मशीन के सामने फोकस किया गया है। हाथ का एक्स-रे करा रहे हैं तो उसमें हाथ की हड्डियों का ही चित्र आएगा, फेफड़े, हॉर्ट और लिवर का नहीं आएगा। आभामंडल में पूरे शरीर की स्क्रीनिंग सामने आ जाती है। पता लग जाता है कि आदमी के भीतर क्या है और बाहर क्या है? स्थूल में क्या है और सूक्ष्म में क्या है? आजकल आभामंडल का सिद्धांत बहुत व्यापक बन गया है।

आभामंडल रंगों का एक मिश्रण है। हर व्यक्ति के पास रंग होते हैं। एक आदमी शिकायत करता है कि नींद नहीं आती, अनिद्रा का रोग है। डॉक्टर उसे दवा के रूप में नींद की गोली देगा, किंतु आभामंडल के बारे में जानकारी रखने वाला उसे गोली, इंजेक्शन नहीं देगा। वह उसे बताएगा कि तुम्हारे शरीर में लाल रंग का संतुलन नहीं है, इसलिए तुम अनिद्रा की बीमारी से ग्रस्त हो गए हो। चाहे शारीरिक बीमारी हो, चाहे मानसिक और भावात्मक बीमारी हो, इन सारी बीमारियों को आभामंडल के द्वारा जाना जा सकता है।

प्रेक्षाध्यान में हम रंगों का प्रयोग कराते हैं, जिससे रंगों का संतुलन बन सके और आदमी उत्सव के आनंद में जी सके। इस संतुलन को हम चरित्र के साथ देखें, भावों के साथ देखें।

एक युवक बहुत क्रूर है। एक वृद्ध आदमी भी बड़ा क्रूर और नृशंस है। कारण क्या है? आभामंडल के परिप्रेक्ष्य में इस कारण की मीमांसा करें तो पता चलेगा कि उसमें कृष्णलेश्या का अनुपात अधिक है। काला रंग उसमें ज्यादा है। इसलिए उसकी प्रवृत्ति में क्रूरता आ गई और वह अकरणीय कार्य कर रहा है। जब यह रंग हावी होता है तो बुद्धि-विवेक सब तिरोहित हो जाते हैं। रंग दो तरह के होते हैं–डार्क और ब्रॉइट। जब यह डार्क या काला आभामंडल आता है तो आदमी क्रूर बन जाता है, मानवीय गुणों को खो देता है।

कुछ लोगों में ईर्ष्या की प्रवृत्ति बहुत ज्यादा होती है। किसी का उत्कर्ष और प्रगति वे फूटी आंख भी नहीं देख सकते। ऐसे लोगों में डार्क (नीला) रंग प्रबल होता है। वह आदमी में ईर्ष्या की भावना को प्रबल बनाता है। ईर्ष्या के वशीभूत आदमी अपने भले-बुरे की बात भी भूल जाता है।

एक आदमी बहुत मायावी है। तरह-तरह के जाल बुनने और बिछाने में बहुत कुशल है। जो वक्र है, उसका आचरण भी वक्र होता है। बहुत से लोगों द्वारा यह कहते हुए सुना जाता है–'उस आदमी से सावधान रहना, उसके पैरों से लगाई हुई गांठें तुम हाथ

से भी प्रयत्न करके नहीं खोल पाओगे।' सचमुच! इस तरह के आदमी होते हैं जो दूसरों को नाच नचा देते हैं। गांवों में इस तरह के कुछ आदमी पाए जाते हैं, जिनसे सारा गांव परेशान रहता है। आभामंडल के आधार पर इसका विश्लेषण करें तो पाएंगे कि ऐसे व्यक्ति का आभामंडल कपोत (कबूतर के रंग) लेश्या से युक्त होता है।

हम भावों को रंगों के आधार पर और रंगों को भावों के आधार पर पहचान सकते हैं। कौन-सा रंग ज्यादा मात्रा में शरीर के आभामंडल में होता है तो आदमी का व्यवहार किस तरह का होता है। लेश्याएं आदमी के व्यवहार को बदल देती हैं। कभी-कभी इनकी सक्रियता के कारण अच्छे आदमी का व्यवहार भी बहुत बुरा हो जाता है। इसी तरह कभी-कभी बुरा आदमी भी अच्छा व्यवहार करता हुआ देखा जा सकता है। रंगों की अल्पता या बहुलता मनुष्य के स्वभाव में परिवर्तन का बहुत बड़ा कारण बनती हैं।

एक आदमी धार्मिक वृत्ति का है। पियधम्मे दढधम्मे—वह धर्म में दृढ़ है। इसका कारण स्पष्ट है कि उस आदमी में पीले रंग का प्रभाव प्रबल है। जिसका आभामंडल पीले रंग से प्रभावित होता है, उसमें पद्मलेश्या की प्रधानता है, उसे धर्म में विशेष रुचि होगी।

कोई आदमी बेहद चंचल है। अचानक उसके स्वभाव में स्थिरता और गंभीरता दिखाई देती है तो समझें कि उसमें तैजस रंग के परमाणु या तैजसलेश्या ज्यादा काम कर रही है। इसी तरह जिस व्यक्ति में वीतरागता है, कषाय उपशांत हैं तो समझ लेना चाहिए कि उस व्यक्ति में सफेद रंग अपना प्रभाव दिखा रहा है।

ललाट पर सफेद रंग का ध्यान क्रोध, अहंकार आदि का शमन करता है। हमारे सामने एक बार एक विद्वान ने अपनी बात रखी कि यह बात ठीक है कि प्रेक्षाध्यान से क्रोध शांत होता है, आवेश शांत होता है। आप ऐसे प्रयोग कराएं जिससे लोभ शांत हो जाए। यह सबसे मुख्य बात है। लोभ शांत होने पर बहुत सारी बुराइयां स्वतः मिट जाएंगी। अनेक दुर्गुणों का जनक लोभ है। आज की सारी छीना-झपटी, दौड़-भाग, घपले-घोटाले इसी लोभवृत्ति के कारण हो रहे हैं। हत्या जैसे अमानुषिक कर्म भी अधिकांश इसी कारण होते हैं।

रंगों का एक बहुत बड़ा विज्ञान है। इसी के आधार पर 'कलर थेरॅपि' का आविष्कार हुआ है। रंगों की मैचिंग किस तरह की स्थितियों का निर्माण करती है, यह बहुत विस्तार से जानने की बात है। एक आदमी ने अपने नए मकान का कलर करवाया। रंगों के बारे में जानकारी नहीं थी। इसलिए उसने इस पर ध्यान भी नहीं दिया। रहने और सोने के कमरों में गहरे लाल रंग की पुताई करवा दी। परिणाम यह हुआ कि घर में निरंतर महाभारत शुरू हो गया।

कपड़ों के बारे में भी रंग विज्ञान अपना काम करता है। विशेष रंग के कपड़े आदमी की आदत में बहुत बड़ा बदलाव ला देते हैं। गहरे लाल रंग के कपड़े व्यक्ति को गुस्से की दिशा में अग्रसर कर देंगे। नीले रंग के कपड़ों से आपकी प्रवृत्ति में ईर्ष्या का समावेश शुरू हो जाएगा। नीलांबर और पीतांबर धारण करने के पीछे कोई न कोई अर्थ रहा है। जिसकी बुद्धि मंद है, वह पीले रंग को बार-बार देखे तो बुद्धि में तीव्रता आनी शुरू हो जाएगी, स्मृति भी अच्छी हो जाएगी। हर्ष, शोक, चिंता, आलस्य और भय—इन सब पर रंगों का बड़ा प्रभाव होता है। रंगों के इस विज्ञान का अच्छी तरह अध्ययन करके आदमी अपने स्वभाव, अपनी प्रवृत्तियों और आदतों में परिवर्तन ला सकता है। ये रंग पॉजीटिव और नेगेटिव दोनों तरह का प्रभाव डालते हैं।

पर्वों के साथ जो रंग जुड़े हैं, उन पर भी विचार करें। क्या रंगों के दर्शन मात्र से ऐसा हो सकता है? हां, हो सकता है, किंतु स्थायी प्रभाव चाहते हैं तो लंबे समय तक रंगों पर ध्यान करना होगा, एक तरह की घुटाई करनी होगी। उत्तेजना के रंगों और उपशम या शामक रंगों पर हमने तरह-तरह के प्रयोग किए

और उनका प्रभाव भी देखा। रंगों के प्रयोग को हमने शारीरिक, मानसिक और भावात्मक दृष्टि से देखा और उनका परीक्षण किया। प्रारंभ में प्रेक्षाध्यान शिविर के साथ रंग चिकित्सा के प्रयोग भी करवाते थे। रंग-बिरंगी बोतलों के पानी का बड़ा उपयोग होता था।

रंगों के बारे में एक-दो बात जानने से कुछ नहीं होगा। हमने इस बारे में कुछ कहा और आपने सुन लिया, इससे भी कोई बहुत लाभ नहीं होगा। मुख्य बात है प्रयोग और ध्यान की। रंग कोई इस्तेमाल की चीज नहीं, ध्यान की चीज है। अनुप्रेक्षा के सिद्धांत में रंगों की अनुप्रेक्षा करते हैं। आदमी चिंताग्रस्त है, डर लग रहा है, भयाक्रांत है, ऐसी स्थिति में चमकता हुआ मोरपंख जैसा नीला रंग बहुत लाभदायी होगा। ट्रैंक्विलाइजर जैसी शामक दवा से भी अधिक इस प्रयोग का प्रभाव होगा। एक बार आप सारी चिंता और भय से मुक्त हो जाएंगे। इसके लिए निरंतर अभ्यास करना होगा।

होली का दिन हर्ष और आनंद का दिन है। यह पर्व लौकिक दृष्टि से कुछ भी हो, इसका हम आध्यात्मिकीकरण करें। इसे अध्यात्म की दृष्टि से देखें तो सचमुच! यह दुःखों को मिटाने का दिन है। दुःखों को मिटाने में रंग बहुत सहायक सिद्ध होते हैं। इस दिन को प्रतीक मानकर हम लेश्याध्यान का अपने जीवन में प्रयोग करना सीखें। मैंने प्रेक्षाध्यान के शिविर में लेश्याध्यान का पहली बार प्रयोग करवाया तो प्रोफेसर दयानन्द भार्गव मेरे पास आए और बोले–'मैंने ध्यान के कई शिविरों में भाग लिया, किंतु आज प्रयोग में जितना आनंद आया, वैसा कभी नहीं आया।'

रंगों से आप एक दिन खेल लेंगे, कोई फायदा नहीं होगा, किंतु रंगों को आप प्रतिदिन अपने ध्यान में लाएंगे तो इससे आपके जीवन में अभूतपूर्व परिवर्तन घटित होगा। आप वर्ष में एक ही बार रंगों से क्यों खेलते हैं? आप रंगों से रोज खेलें और बार-बार खेलें। रंगों के प्रयोग से आपके जीवन में सदा शांति और खुशहाली रहेगी।

हम संकल्प लें कि कभी दुःखी नहीं बनेंगे। कभी शोक में, संताप में, तनाव में नहीं जाएंगे। हमारी प्रसन्नता अखंड रहे। लेश्याध्यान का सिद्धांत भगवान महावीर से मिला और जिसका प्रयोग अनेक आचार्यों और योगवेत्ताओं ने किया, हम भी कर रहे हैं। अगर यह प्रयोग आप निरंतर करते रहें तो सुख की चाबी आपके हाथ में होगी। समस्या ज्यादा चाबी की होती है। जब तक चाबी नहीं मिलती, ताला नहीं खुलता। प्रवेश नहीं हो पाता। सुख की यह चाबी हमारे हाथ में रहे। आत्मकर्तृत्व को समझने और उस पर भरोसा करने का प्रयत्न करें। अगर ऐसा होता है तो होली का आध्यात्मिक रूप आपकी समझ में आ जाएगा।

अहिंसा का सम्यक् दृष्टिकोण

महारंभी जीवनशैली स्वस्थ समाज के लिए काम्य नहीं हो सकती। अनारंभी जीवनशैली सामाजिक प्राणी के लिए संभव नहीं हो सकती। बीच का रास्ता है अल्पारंभ का। अल्पारंभ का अर्थ है हिंसा का अल्पीकरण।

- हिंसा के अल्पीकरण का पहला प्रयोग है–अनावश्यक हिंसा का वर्जन।
- हिंसा के अल्पीकरण का दूसरा प्रयोग है–आक्रामक वृत्ति का परित्याग।
- हिंसा के अल्पीकरण का तीसरा प्रयोग है–आत्महत्या का परित्याग।
- हिंसा के अल्पीकरण का चौथा प्रयोग है–भ्रूणहत्या का परित्याग।

–आचार्य तुलसी

कहानी सनाथ और अनाथ की

इस कहानी का महत्त्वपूर्ण हिस्सा है नाथ और अनाथ का मौलिक निरूपण। सांसारिक दृष्टि से कोई किसी का नाथ बन सकता है। अध्यात्म की दृष्टि से व्यक्ति स्वयं ही अपना नाथ है। वह व्यक्ति नाथ बनता है, जिसकी सारी इच्छाएं समाप्त हो जाती हैं। मुनि अनाथी सब चाहों को मन की खूंटी से उतारकर निष्काम बन गया। इस स्थिति में पहुंचने के बाद वह अपना नाथ बन गया, सबका नाथ बन गया।

मगध देश का सम्राट श्रेणिक एक बार विहार यात्रा के लिए मंडितकुक्षि नामक उद्यान में गया। उद्यान में घूमते समय सम्राट ने वहां ध्यानस्थ एक मुनि को देखा। वह मुनि के निकट गया। मुनि का रूप, लावण्य, तेज और ओज देखकर उसे आश्चर्य हुआ। उसके सौंदर्य से आकृष्ट होकर वह बोला—

अहो! वण्णो अहो! रूवं,
अहो! अज्जस्स सोमया।
अहो! खंती अहो! मुत्ती,
अहो! भोगे असंगया।।

आश्चर्य! कैसा वर्ण और कैसा रूप है! आश्चर्य! आर्य की कैसी सौम्यता है! कैसी क्षमा और निर्लोभता है! इससे भी अधिक आश्चर्य! भोगों में कैसी अनासक्ति है!

मैं अनाथ हूं

मुनि का सौंदर्य वास्तव में ही विलक्षण था। सम्राट ने अब तक जिन मुनियों को देखा, संभव है, वे कृशकाय थे, श्याम वर्ण थे और उनकी हड्डी-पसली निकली हुई थी। जर्जर देह में एक तपस्वी की कल्पना स्वाभाविक है, पर उस दिन सम्राट की आंखों के सामने जो मुनि खड़ा था, उसकी दिव्यता ने उसको झकझोर दिया। राजकुमार के साथ रूप-लावण्य की संगति है, पर मुनि के साथ रूप का संबंध ही क्या? तरुण अवस्था, सुंदर शरीर, कुल से आभिजात्य इस मुनि ने किस परिस्थिति से बाध्य होकर घर छोड़ा है? इस प्रश्न का समाधान पाने के लिए वह मुनि के पास खड़ा हो गया और ध्यान पूरा होने की प्रतीक्षा करने लगा।

मुनि ने ध्यान पूरा किया। सम्राट ने पूछा—'आश्चर्य! अभी तुम तरुण हो। यह समय संसार के भोग भोगने का है। ऐसे समय में तुम साधु क्यों बने?' मुनि ने बिना किसी भूमिका के सीधा उत्तर दिया—'मैं अनाथ हूं, मेरा कोई नहीं है।'

मैं नाथ बनता हूं

मुनि का उत्तर चौंकानेवाला था। सम्राट बोला—'तुम्हारा चेहरा देखकर तो ऐसा नहीं लगता कि तुम अनाथ हो। फिर भी यह बात सही है तो आज से मैं तुम्हारा नाथ बनता हूं। तुम मेरे साथ चलो। मैं तुम्हारे लिए सब प्रकार की सुविधाएं जुटा दूंगा।'

तुम स्वयं अनाथ हो

मुनि सम्राट की इस बात पर थोड़ा-सा मुस्कराया और बोला—'तुम स्वयं अनाथ होते हुए दूसरों के नाथ कैसे बनोगे?' मुनि के इस कथन से व्याकुल होकर सम्राट ने कहा—'मैं मगध का सम्राट हूं। मेरे पास हाथी हैं, घोड़े हैं, अंत:पुर है, सोना है और उत्कृष्ट संपदा है। मेरी प्रभुसत्ता अखंड है। आज्ञा और ऐश्वर्य का स्वामी होकर भी मैं अनाथ कैसे हुआ?'

सब कुछ होने पर भी अनाथ

मनुष्य सब प्राणियों में अधिक विवेक रखता है। वह ज़ानता है कि संसार के सारे संबंध क्षणिक हैं। वह न तो अपने साथ कुछ लेकर आता है और न कुछ लेकर जाता है फिर भी मेरेपन का भार ढोता रहता है। उसकी स्थिति का चित्रण करते हुए कवि ने लिखा है–

मेरो देह मेरो गेह मेरो परिवार सब,
मेरा धनमाल मैं तो बहुविध भारो हूं,
मेरे सब सेवक हुकम कोउ लोपै नांहि,
मेरी पत्नी को मैं तो अधिक पियारो हूं,
मेरो वंश ऊंचो मेरो बाप दादो ऐसो भयो,
करत प्रशंसा मैं तो जगत–उजारो हूं,
'सुंदर' कहत मेरो मेरो करि जान्यो शठ,
ऐ तो नहि जान्यो मैं तो काल ही को चारो हूं।।

धन, परिवार, राज्य, सेवक, सेना सबके प्रति ममकार से बंधा हुआ आदमी अपने स्वामित्व को देखता है, पर यह नहीं देखता कि वह भी किसी के अधीन है। और किसी के अधीन हो या नहीं, वह काल का चबैना तो निश्चित रूप से है। काल उसे निरंतर चबा रहा है। इस सत्य से आंख मूंदनेवाला व्यक्ति ही अहं को पुष्ट करता है। मुनि ने सम्राट के अहं पर चोट करने के लिए कहा–'सम्राट! तू सब कुछ है, पर अनाथ है।'

क्या मैं अनाथ हूं?

सम्राट एक क्षण के लिए हतप्रभ-सा रह गया। उसका अहं चरमरा उठा। उसके मन में संदेह के सांप ने फन उठा लिया। वह सोचने लगा–यह मुनि इतने आत्मविश्वास के साथ बोल रहा है। बात क्या है? क्या मैं सचमुच! अनाथ हूं? इस चिंतन ने उसको मुनि के सामने अपनी भूल स्वीकार करने के लिए प्रेरित किया, किंतु अहंकार फिर बीच में आ गया। उसकी प्रेरणा से वह बोला–'तुम मुनि होकर भी असत्य संभाषण क्यों कर रहे हो? तुमने ऐसी गलत बात कहकर मेरा अपमान किया है। क्या तुम नहीं जानते कि कहां पर कैसी भाषा का प्रयोग करना चाहिए?' कहा जाता है–

तास्तु वाचः सभायोग्या या चित्ताकर्षणक्षमा।
स्वेषां परेषां विदुषां द्विषामविदुषामपि।।

जो वाणी स्वयं को प्रिय लगे, दूसरों को प्रिय लगे, विद्वानों और साधारण जनों को प्रिय लगे, इससे आगे अपने दुश्मनों के चित्त को भी लुभा ले, वही सभा में बोलने के योग्य होती है। मुनि सम्राट की मन:स्थिति को समझ रहा था। उसे अधिक समय तक उलझन में न रखकर वह साफ-साफ शब्दों में बोला–'राजन्! धन, वैभव और राज्यसत्ता की दृष्टि से तू नाथ है, यह बात सही है, पर इस दृष्टि से मैं भी कम नहीं था। मैं एक सभ्य श्रेष्ठी का पुत्र था। उनके घर में किसी बात की कमी नहीं थी।'

नाथ वह बनता है

सम्राट का आश्चर्य और अधिक बढ़ गया। वह विस्मय को अभिव्यक्ति देता हुआ बोला–'मुनि! तब तुमको यह क्या सूझा?' इस प्रश्न के उत्तर में मुनि ने अपनी पूरी कहानी सुना दी। उसका सारांश यह है कि मैं कौशांबी नगरी में अपने माता-पिता के साथ रहता था। युवावस्था में मेरी आंखों में भयंकर वेदना उठी। मेरे माता-पिता ने बहुत प्रकार की चिकित्सा कराई। मेरे भाइयों ने बहुत प्रयत्न किया। मेरी पत्नी ने बहुत जागरूकता रखी, पर मैं बीमारी से मुक्त नहीं हो पाया। आखिर मैंने अपने आपको धर्म के भरोसे छोड़ दिया। मैंने संकल्प किया कि यदि मैं एक बार भी इस वेदना से मुक्त हो जाऊं तो अनगारवृत्ति स्वीकार कर लूं। इस संकल्प के बाद क्रमशः मेरी वेदना क्षीण होने लगी। सूर्योदय होने तक मैं पूर्ण स्वस्थ हो गया। मुझे अपना संकल्प याद था। मैं साधु बन गया और मैंने सनाथता का अनुभव किया।' सम्राट सनाथ और अनाथ के यथार्थ स्वरूप से परिचित होकर प्रसन्न हुआ। उसने मुनि के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित की और एक नई दृष्टि के साथ अपने घर पहुंचा। ❐

हम खोज रहे हैं

आचार्य तुलसी...

की कोई बात, जो उन्होंने आपको कही

- जो आपके जीवन का सूत्र बन गई
- जो दिल को छू गई
- जिसने आपको नई राह दिखाई
- जिससे आपको आज भी शक्ति मिल रही है

आपके दिल और दिमाग में बसी
वो बात, वो घटना...

आप हमें बतायें
हम लाखों तक पहुंचायेंगे।

आपके संस्मरण को आचार्य तुलसी की जन्मशती के अवसर पर प्रकाशित किये जा रहे

तुलसी
स्मृति ग्रंथ

में स्थान मिल सकता है।

इतिहास का संकलन करने में हमें अपना सहयोग दें।
आप अपना संस्मरण अधिकतम 700-800 शब्दों में लिखकर हमें भेज सकते हैं,
वीडियो/ऑडियो में रिकार्ड करके भेज सकते हैं या tulsismritigranth@gmail.com पर ई-मेल भी कर सकते हैं।
आपके लेख के प्रकाशन/अप्रकाशन और भाषा शुद्धि व लेखन शैली में सुधार/परिवर्तन
का सम्पूर्ण अधिकार सम्पादकीय समिति के पास निहित होगा।

प्रधान सम्पादक
तुलसी स्मृति ग्रंथ कार्यालय
2, मैसूर हाउस, जैकब रोड, सिविल लाइन्स, जयपुर 302 006
फोन:0141-5111111, 5102502 ई-मेल : tulsismritigranth@gmail.com

आचार्य तुलसी : मानवतावादी दर्शन के क्रियाशील चिंतक

बी. एल. आच्छा

आचार्य तुलसी राष्ट्रीय एकता और मानवमात्र में शांतिपूर्ण सद्भाव के प्रचेता व राष्ट्र संत थे। सांप्रदायिक सद्भाव, शांतिपूर्ण सहचार, अहिंसा की जमीनी कार्ययोजना और समरस दृष्टि के लिए उन्हें इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय एकता एवं शांति पुरस्कार से सम्मानित किया गया था। जैनियों के एक छोटे से संप्रदाय 'तेरापंथ' के वे नवम आचार्य थे। वे कहा करते थे–'मैं सबसे पहले मनुष्य हूं, फिर धार्मिक हूं, फिर जैन हूं और अंत में तेरापंथी।' इससे लगता है कि तेरापंथ उनके लिए ग्रह-कक्षा या धुरी मात्र था। उनका लक्ष्य एक विश्वमानव की संकल्पना थी, जिसके लिये युगधर्म के प्रकाश की नई वर्णमाला गढ़ने के लिए वे गतिशील रहे। प्रकाश की नई वर्णमाला लिखने वाला जागरण-धर्मी व्यक्तित्व परंपरा से सवाल करता है। धर्म को युग-धर्म बनने के लिए विवश करता है। जड़ता और स्थितिशीलता को झिंझोड़ता है। शास्त्र को जीवंत भाष्य देता है। कर्मकांड को उदात्त आचरण की नई मर्यादाएं देता है।

जैन परंपरा के अनुरूप आचार्यश्री तुलसी ने एक लाख कि.मी. से अधिक पदयात्राएं की। जंगल की ढाणी से लेकर राष्ट्रपति-प्रधानमंत्री निवास तक। पंजाब की नहरों से लेकर कन्याकुमारी की हिलोरों तक। गुजरात से लेकर कोलकाता तक, परंतु इन यात्राओं में उनके चरण ही क्रियाशील नहीं रहे, युगसम्मत चिंतन नए सोपान गढ़ता रहा। महज ग्यारह बरस की अवस्था में मुनि-दीक्षा का असाधारण संकल्प लिया। ग्यारह वर्षों के मुनित्व काल में विविध शास्त्रों के बीस हजार पद्य कंठस्थ कर लिए। साधुत्व के प्रति निखरी हुई आस्था, आचार्य के प्रति क्रियाशील निष्ठा, शास्त्रों की नवीन व्याख्या कर सकने की क्षमता और अन्य साधु-साध्वियों के प्रति मिलनसारिता के कारण वे बाईस वर्ष की अवस्था में ही युवाचार्य मनोनीत हुए। और तीन दिन बाद, आचार्य कालूगणि के निर्वाण के कारण आचार्यपद से धर्मसंघ को दिशा दी। आचार्य कालूगणि ने इस युवामुनि में परिवर्तन की स्वरलिपि को पढ़ लिया था, जो राष्ट्र की एकता और मानवता के जागरण का उद्घोष बन गई।

युवाचार्य के सामने कई चुनौतियां थीं। एक बंद समाज था। जातियों और पंथों में बंटा पराधीन राष्ट्र था। हिंसा से त्रस्त विश्व था। पहले अपने ही समाज से साक्षात्कार किया। रूढ़ियों में बुरी तरह जकड़ा हुआ। औरतों में पर्दा-प्रथा। घर-उजाड़ू मृत्युभोज! मृत्यु के बाद गलाफाड़ रुदन। विधवाओं के काले वस्त्र। अशिक्षा। विवाह के आडंबरपूर्ण प्रदर्शन। दहेज की नुमाइश। सोने का मोह। जरा दूर तक झांका तो जातियों-उपजातियों के बीच अछूतपन का शर्मनाक व्यवहार। धूम्रपान और शराब के व्यसन। संप्रदायों की कट्टरता में जड़ीभूत आस्थाएं। तब आचार्यश्री तुलसी ने एक आंदोलन चलाया–नया मोड़। गांव-गांव पदयात्राएं कीं। हर जाति और वर्ग से मिले। हरिजनों और पिछड़ों की बस्तियों में गए। उनकी गरीबी और हीनता बोध को महसूस किया–उच्च जातियों के गर्वीले अहं को भी। इन पद-यात्राओं में इन रूढ़ियों, व्यसनों, अस्पृश्यता की मनोवृत्तियों पर कसकर प्रहार किए। उनके सरलतम किंतु भावात्मक उद्बोधनों का

असर हुआ। लोगों ने मृत्युभोज बंद किए। महिलाओं ने पर्दा हटाया। दहेज प्रदर्शन समाप्त हुए। रोने की प्रथाएं और विधवाओं के काले कपड़े भी खत्म हुए। लोगों ने धूम्रपान, मांसाहार और नशा न करने की प्रतिज्ञा की। लोग इस महान पदयात्री को श्रद्धावश धन और अन्य भेंट देना चाहते थे, परंतु युगस्वर फूंकनेवाले आचार्य ने इतना ही कहा–'इन सारी रूढ़ियों को, दिखावों को, छुआछूत की बुराइयों को दानस्वरूप मेरी झोली में डाल दीजिए।' दरअसल एक जागरूक संत क्रियाशील समाजशास्त्री भी होता है, जो जकड़े हुए बंद समाज को खोलने के लिए तत्पर होता है। नए परिवर्तन के लिए परिष्कार और संकल्प को तरजीह देता है। मर्यादाओं के नए रंगों के लिए जंग लगी रूढ़ियों पर निर्मम प्रहार करता है।

आचार्य श्री तुलसी के आचार्यत्व काल के अनेक पुरश्चरण हैं। हर चरण पिछले को पूर्ण बनाता है। 'अणुव्रत-आंदोलन' एक ऐसा ही पुरश्चरण है। इस आंदोलन ने धर्म को सांप्रदायिकता की केंचुल से निकाल कर जनधर्म के रूप में प्रतिष्ठित किया। अणुव्रत उन छोटी-छोटी आचार-संहिताओं का कुल योग है, जिसमें पंथ, उपासना-पद्धति, क्षेत्रीय भूगोल, भाषा, जाति या संवैधानिक व्यवस्था आड़े नहीं आती। राष्ट्र के ही नहीं, अपितु मानवता के नैतिक और आध्यात्मिक उत्कर्ष के लिए, जीवन में उसकी अनुकूल व्यावहारिकता के लिए विशद, किंतु सहज चिंतन, जिसमें आचरण का पक्ष ही केंद्रीय है। उनका कवि-मन इस तरह मुखरित हुआ है–

'व्यक्ति-व्यक्ति में धर्म समाया
जाति-पांति का भेद मिटाया
निर्धन-धनिक न अंतर पाया
जिसने धारा जन्म सुधारा।
अमर रहेगा धर्म हमारा।।'

इन मर्यादाओं को वे व्यक्ति से शुरू करते हैं। लिखते हैं–

'अपने से अपना अनुशासन
अणुव्रत की परिभाषा,
वर्ण-जाति या संप्रदाय से
मुक्त धर्म की भाषा।
छोटे-छोटे संकल्पों से
मानस परिवर्तन हो।
संयममय जीवन हो।।'

राष्ट्रीय स्तर पर नैतिक चरित्र के उन्नयन के बगैर न तो राष्ट्र का आत्म-सम्मान विकसित हो सकता है, न ही लोकतांत्रिक मूल्यों का संवर्धन और न ही भौतिक विकास के लाभ अंतिम आदमी तक पहुंच सकते हैं।

जैन परंपरा सुदीर्घ है। प्राकृत-अपभ्रंश के अलावा कई दक्षिण भारतीय भाषाओं में भी प्रभूत जैन साहित्य है। आचार्यश्री तुलसी ने अनेक शास्त्रों के हिंदी अनुवाद का संकल्प लिया–'आगम ग्रंथों के संपादन और उनकी व्याख्याओं का।' साधु-साध्वियों को प्राकृत-अपभ्रंश सीखनी पड़ी। उनके पाठ संपादन और व्याख्याओं के लिए विमर्श हुआ। पचीस वर्षों के सतत अध्यवसाय का फलित है–आगम ग्रंथों का संपादन। उनके बाद आदर्श साहित्य संघ से अनेक ग्रंथ निकले जो धर्म के वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक, समाजशास्त्रीय, योगसाधनापरक, परामनोवैज्ञानिक क्षितिजों का उन्मेष ही नहीं करते बल्कि वैज्ञानिक प्रयोगों की कसौटी और नवीनतम खोजों के परिप्रेक्ष्य में उनकी व्यावहारिकता का भी संदर्शन कराते हैं। आचार्यश्री तुलसी की कल्पना और प्रेरणा का साकार रूप है–'जैन विश्व भारती', जो विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा मान्य विश्वविद्यालय है। इसमें व्यक्तित्व विकास के अनुरूप प्रेक्षाध्यान और जीवन-विज्ञान के पाठ्यक्रम विकसित किए गए हैं, क्योंकि उनकी मान्यता रही है–'सुधरे व्यक्ति, समाज व्यक्ति से, राष्ट्र स्वयं सुधरेगा।' इसलिए व्यक्ति के असांप्रदायिक, किंतु नैतिक परिष्करण अथवा अध्यात्म के उदात्त रूप से ऐसे लचीले समाज की रचना होगी, जिसमें जाति, वर्ण, भाषा, रंग, प्रांत आदि के भेद बाधक नहीं बनेंगे। एक राष्ट्रीय और मानवीय आस्था जन्म लेगी। साधु-संतों को भी परिवीक्षाकाल में संस्कृत-प्राकृत के साथ

अंगरेजी का अध्ययन कराने की प्रेरणा दी है, ताकि वे परंपरा और विश्वभाषा के माध्यम से नए ज्ञान-क्षेत्रों से जुड़े रहें।

यों परंपरा किसी उज्ज्वल प्रकाश की ही उपज होती है, परंतु कालांतर में उसका प्रकाश मद्धिम होकर जड़ता पैदा कर देता है। यदि उनका विरोध किया जाए तो तनाव भरी प्रतिक्रिया होती है। मगर लोग यह भूल जाते हैं कि ये व्यवस्थाएं अपने समय के लिए होती हैं और मानव निर्मित कोई भी व्यवस्था अंतिम नहीं होती। आचार्यश्री तुलसी ने परंपराओं में परिशोधन के खतरे उठाए, लेकिन पारंपरिक पक्ष और युग-संदर्भ को मद्देनजर रखते हुए। लाउडस्पीकर का उपयोग मान्य हुआ। साधु-साध्वियों के अतिरिक्त एक नई श्रेणी विकसित हुई–समण-समणी श्रेणी सारी चारित्रिक और संघीय मर्यादाओं के स्वीकार के साथ इन्हें वाहन-यात्रा एवं गृहस्थों के बीच ठहरने की छूट है। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिंदी और अंगरेजी में निष्णात यह वर्ग अत्यधिक गतिशील है। विदेशी धरती एवं दूरांचलों में इन्होंने अपनी वक्तृता और आचरण की छाप छोड़ी है। विदेशी लोगों को एक सप्ताह की दीक्षा एवं मुनियों को विशिष्ट साधना के लिए प्रयोगधर्मी छूट भी दी गई है।

इस प्रगतिशील दृष्टि का मर्म है–सहिष्णुता और ग्रहणशीलता। ऐसी अन्विति जो हर बिखरी रेखा को जोड़ती है। एक-दूसरे संप्रदाय या वर्ग की गरिमा और सम्मान की रक्षा करती है। आचार्यश्री तुलसी मूर्तिपूजक नहीं थे, पर वे कभी भी मूर्तियों की अवहेलना नहीं करते थे। बल्कि मंदिरों, गिरजों और मस्जिदों में भी चले जाते थे। वे मानते थे कि एक संप्रदाय दूसरे के प्रति अन्याय न करे, घृणा न फैलाए, आक्षेप न करे। विचार सहिष्णु रहे तो फिर एकता ही एकता है। विचारभेद मिट जाए और सब संप्रदाय एक ही विचार के हो जाएं, इसमें न उनका विश्वास था और न ही इसे वे विवेकपूर्ण मानते थे।

युग की पुकार को आचार्यश्री तुलसी स्वप्नों में जागरण मंत्र की तरह सुनते थे। यद्यपि साधु के रूप में उनकी मर्यादाएं थीं, परंतु अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर हिंसा और तनाव को लक्षित कर वे 'अहिंसा-सार्वभौम' का संदेश देते थे। पंजाब-समस्या ने भी इस जागृत संन्यासी को व्यथित किया। संत लोंगोवाल के साथ आचार्यश्री तुलसी की भेंट पंजाब-समस्या के समाधान में काफी कारगर रही। साक्षरता और पर्यावरण की चिंता उनकी दृष्टि के सक्रिय आयाम थे। सामान्य जन से लेकर प्रमुख धर्माचार्यों, सामाजिक कार्यकर्ताओं, विदेशी विद्वानों, ऊर्ध्वचेता मनीषियों, राजनीति के शलाका-पुरुषों से यात्राओं के दौरान सौहार्दपूर्ण समन्वय एवं नैतिक आस्था की जमीन को वे हमेशा तलाशा करते थे। उनकी मूलभूत चिंता चरित्रसम्मत व्यक्ति के विकास की थी, जिससे अनेक समस्याएं स्वतः समाप्त हो जाती हैं।

इन सारी उपलब्धियों के लिए, क्षितिजों के विस्तार के लिए, राष्ट्र की भावनात्मक एकता के लिए आचार्यश्री तुलसी ने अथक संघर्ष किया। लेकिन संकल्पों की दृढ़ता, हृदय के पारदर्शीपन और समन्वय की चाह ने उन्हें ऐसी ओजस्वी वाणी दी है, जो हर बाधा के बाद अधिक तेजस्वी हो जाती थी। जैसे इन परीक्षाओं से उनका मनोभाव निखर कर आया हो। अहिंदीभाषी प्रांतों में भी हिंदी-विरोध के बावजूद लोगों ने उन्हें पूरी श्रद्धा और आकर्षण के साथ सुना। उनकी आन्तर भाषा को, पारदर्शी हृदय के भावनात्मक संकेतों को, आचरण में परिलक्षित क्रियाशीलता को समझने में भाषाएं कभी बाधक नहीं बन पाई। आचार्यश्री तुलसी को उनके दृढ़ संकल्पों और कर्मठ व्यक्तित्व के लिए, राष्ट्र के चारित्रिक उत्थान, पारस्परिक एकता और प्रगतिशीलता के लिए अनेक विशेषणों से मंडित किया गया एक युगप्रधान आचार्य और राष्ट्र संत के रूप में। आज ये विशेषण सार्थक हैं, राष्ट्र की एकता और शांति के लिए जीवन समर्पित करनेवाले कीर्तिशेष आचार्य तुलसी के लिए। ❐

जल्दबाजी से बचिए

'जल्दबाजी मत करो, हमारा समय इस रोगी के जीवन से अधिक कीमती नहीं' एक महान सर्जन ने अपने सहायक डाक्टर से कहा। वे दोनों एक स्त्री के जीवन को बचाने के लिए एक ऑपरेशन कर रहे थे। वह महान सर्जन जानता था कि एक शांत मस्तिष्क और स्थिर नस-नाड़ी इस प्रकार के ऑपरेशन के लिए नितांत अनिवार्य है। त्वरा से-जल्दबाजी से भरा मन विक्षुब्ध होता है, वह चित्त स्थिर नहीं होता। घबराहट से भरा मन फूहड़ होता है—अनाड़ी होता है, भयंकर भूलें करता है तथा प्रयत्न को व्यर्थ कर देता है।

जब आपको कहीं पहुंचने में देर हो रही हो और जल्दबाजी में आप पोशाक बदल रहे हों, तो आपको अपनी सारी उंगलियां अंगूठे की तरह अनाड़ी प्रतीत होती हैं, तब आप बटन को तोड़ बैठते हैं या चीजें गिरा देते हैं। आप टाई ठीक ढंग से नहीं बांध पाते और वास्तव में, तैयार होने में शांत चित्त से जितनी देर लगती थी, उससे अधिक देर लग जाती है।

और इस बीच, आपके भीतर क्या हो रहा है? चिंता के छोटे-छोटे दैत्य आपके भीतर उठ-उठकर हृदय पर हथौड़ियों की-सी चोट कर रहे हैं। वे उत्तेजित होकर कह रहे हैं-'जल्दी करो, जल्दी करो, जल्दी करो। कहीं गाड़ी न छूट जाए या भेंट का समय न बीत जाए।'

जल्दबाजी ओछे मनवालों की आदत है और यह बहुत बुरी आदत है। वे जल्दबाजी में रोटी का डिब्बा बंद करते हैं और गाड़ी या बस पकड़ने के लिए दौड़ते-हांफते हुए जाते हैं। भोजन के समय वे बिना चबाए खाना निगल लेते हैं। दिनभर वे एक काम से दूसरे काम तक पागलों की तरह भागते दिखाई देते हैं। शायद उन्हें श्मशान तक या कब्र तक पहुंचने की जल्दी है।

एक बार मैं एक व्यक्ति से उसकी जल्दबाजी की आदत के बारे में बातचीत कर रहा था। वह झट कहने लगा—'मित्र! क्या तुम जानते हो कि मैं कितने ही बरसों से ऐसी जल्दी करता आया हूं और मेरी स्पीड इतनी तेज हो चुकी है कि अब उसे धीमे नहीं किया जा सकता, घर में पहुंचकर भी नहीं। दिन के भोजन के बाद यदि बाहर नहीं जाता तो मैं फर्श या छत पर ही तेज-तेज चलता हूं। मैं बैठकर आराम कर ही नहीं सकता। चाहे कुछ हो, मैं विश्राम कर ही नहीं सकता, मुझे जल्दी रहती है—हर समय मेरे मन में हड़बड़ी रहती है। एक तनाव-सा हर समय मेरे मन में रहता है। मुझे इसकी आदत हो गई है-एक अभ्यास हो चुका है। चाहे मैं सप्ताह के अंत में छुट्टी पर जाऊं या लंबी छुट्टियों पर भी जाऊं, तो भी यह हड़बड़ी मेरे मन से दूर नहीं होती, यह तनाव की स्थिति मेरे जीवन का अंग ही हो गई है।'

यह व्यक्ति इतना तनावग्रस्त रहता है कि कई बार अनजाने ही मुट्ठियां भींचता दिखाई देता है या कुर्सी की बाजू को मजबूती से पकड़कर जोर से दबाता है। जिस समय यह कार में बैठता है, तो कार के एक भाग को पकड़कर अपनी सीट से शरीर को ऊंचा उठाने का प्रयत्न करता है।

वह कभी शांतचित्त नहीं रहता, कभी आराम से नहीं बैठता। कारण यह है कि वह हर काम को भयंकर वेग से—असीम त्वरा से—बेहद जल्दबाजी से करना चाहता है।

बहुत-से लोग जल्दबाजी के कारण अपनी नस-नाड़ियों को, तंत्रिकाओं को हर समय कसे रहते हैं और परिणाम यह होता है कि तंत्रिकाभंग या विक्षिप्तता का शिकार हो जाते हैं।

अपनी नस-नाड़ियों को, तंत्रिकाओं को और मांसपेशियों को हर वक्त कसकर रखने—हर समय उन्हें तनाव की स्थिति में रखने की आदत बहुत बुरी है। इस आदत से व्यक्ति का अपनी तंत्रिकाओं पर अधिकार नहीं रह जाता। आमतौर पर ये लोग अत्यंत भावुक तथा बेचैन होते हैं। ये लोग किसी भी काम को सुचारू रूप से करने के लिए आवश्यक, उचित समय लगाना नहीं चाहते।

जिस समय आपकी मांसपेशियां अकड़ी हुई हों—तनाव की स्थिति में हों, उस समय आपके मन की स्थिति भी उन्हीं के अनुरूप—तनावग्रस्त होगी। कारण यह है कि मांसपेशियां विचारों की ही आज्ञा का पालन करती हैं। अति तनाव की स्थिति ही प्रायः तंत्रिका-भंग; से पूर्व की स्थिति होती है। इसलिए जो लोग अपने को अतिशय तनाव की स्थिति में रखते हैं, वे हर प्रकार के कष्टों और रोगों को आमंत्रण देते हैं।

विश्व के एक चोटी के हृदयविशेषज्ञ चिकित्सक का मत है कि जो लोग तीन चीजें छोड़ दें, उन्हें हृदयरोग कभी नहीं होगा। ये तीन चीजें हैं—

1. जल्दबाजी HURRY
2. चिंता WORRY
3. घी वाला वसा युक्त भोजन CALORY

कुछ व्यापारियों तथा उद्योगपतियों में इतनी अधिक महत्त्वाकांक्षा होती है कि जो उन्हें हर समय तेज दौड़ने की स्थिति में रखती है। एक पल के लिए भी वे चैन से नहीं बैठते, चाहे उनका शरीर थककर चूर हो गया हो और मस्तिष्क पूरी तरह तनावग्रस्त हो गया हो। वे सामर्थ्य से अधिक काम करते हैं और दिन-रात में एक पल भी उन्हें पूरी तरह विश्राम नहीं मिलता।

इस प्रकार की अति-महत्त्वाकांक्षा एक रोग का रूप धारण कर लेती है, परंतु बहुत-से लोगों को इसका पता ही नहीं चलता। वे समझ नहीं पाते कि किस शक्ति के द्वारा वे निरंतर आगे-ही-आगे धकेले जाते रहते हैं। यदि उनसे गली में भेंट हो जाए, तो एक पल रुककर बात करने का भी समय उनके पास नहीं होता। यदि भेंट हो जाए, तो एकदम अपनी घड़ी की ओर देखकर बताएंगे कि उन्हें पूर्वनिर्धारित भेंट के लिए तुरत ही कहीं पहुंचना है और उन्हें पहले ही देर हो रही है।

ये लोग हर समय त्वरा से—जल्दबाजी से ग्रस्त रहते हैं। किसी अदृश्य शक्ति द्वारा उन्हें बड़े वेग से आगे को भगाया जाता है, मानो वह शक्ति उन्हें बलपूर्वक आगे दौड़ा रही हो—कोड़े मार-मारकर उन्हें भगा रही हो। वे समझते हैं कि यदि वे लगातार पूरे वेग से न दौड़ते रहे, तो अपने हृदय में विद्यमान आकांक्षा को पूर्ण नहीं कर सकेंगे।

इस प्रकार के लोगों की दशा दयनीय दिखाई देती है। उनकी तुलना उस हरिण से की जा सकती है, जो शिकार से बचने के लिए भागा और लगातार दौड़ता ही जा रहा है—गहरे हिम में दौड़ने में उसे बहुत कष्ट हो रहा है; परंतु वह रुकने का नाम ही नहीं लेता। हर समय उसे अपने पीछे लगे शिकारी कुत्तों की आवाज सुनाई देती है। यद्यपि वह हरिण अपनी सुरक्षा के लिए भाग रहा है, परंतु उसे कहीं भी चैन नहीं है।

जल्दबाजी और चिंता शहरी जीवन का अनिवार्य अंग बन चुकी है; परंतु स्वास्थ्य एवं प्रसन्नता की वह घोर शत्रु है। हृदय रोग तथा मस्तिष्क रक्ताघात आदि रोग इसी हड़बड़ी से आते हैं और रोगी को या तो तुरत अस्पताल पहुंचाया जाता है या फिर वह बिस्तर पर ही मृत पाया जाता है।

एक व्यक्ति के बारे में उपहास से यह कहा जाता है कि वह सवेरे का समय बचाने के लिए दिन का खाना भी रात को ही खा लिया करता था।

अधिक की प्यास में त्वरा, तेजी, हड़बड़ी और जल्दबाजी करके अपने स्वास्थ्य को बिगाड़ना या जीवन से ही हाथ धो बैठना कहां की बुद्धिमत्ता है?

जल्दबाजी से व्यक्ति चिड़चिड़ा और क्रोधी स्वभाव का हो जाता है। तनिक-सी भी बात पर वह चिढ़ जाता है। परंतु इस प्रकार के व्यक्ति के प्रयत्न उतने प्रभावशाली व सफल नहीं होते, जितने कि शांतचित्त तथा संतुलित मन वाले व्यक्ति के होते हैं।

बहुत-से लोग 'धीमी-गति' की निंदा किया करते हैं। उनका कहना है कि दिन के भोजन में इतना समय गंवाना और सायंकाल की चाय में समय खोना अनुचित है। लेकिन वे नहीं जानते कि शांतचित्त से दिन का भोजन करने और सायंकाल के चायपान से मनुष्य को स्वास्थ्य, सफलता तथा दीर्घजीवन की प्राप्ति होती है।

जल्दी-जल्दी खाने-पीने से हाजमा बिगड़ता है और उससे शरीर के स्वास्थ्य पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। कुछ अति व्यस्त व्यक्ति तो भोजन और चाय के साथ-साथ काम भी करते जाते हैं। यह और भी बुरी बात है।

एक व्यक्ति जब सवेरे कार्यालय में जाता है, और इस इच्छा से जाता है कि दिन-भर सर्वोत्तम कार्य करेगा, और यदि वह छोटी-छोटी बातों की चिंता करता है, या छोटी-छोटी भूलों पर बेचैन हो जाता है, तो उसका मन संतुलित कैसे रह सकता है? कर्मचारियों की तनिक-सी लापरवाही से हुई भूलों या भारी गलतियों से वह यदि झल्लाने लग जाता है, तो वह प्रभावी व्यापार-व्यवसाय नहीं कर पाता, वह दिन-भर की योजना को क्रियान्वित नहीं कर पाता; क्योंकि कुढ़ने से, क्रोध से, बेचैनी से मन की सृजनात्मक शक्ति व क्रियात्मक सामर्थ्य नष्ट होता है। मन बोझिल हो, तो काम घटिया होता है। हड़बड़ी और कुढ़न से मन की कार्यशक्ति-ऊर्जा बिखर जाती है और निर्बल हो जाती है।

मन के संतुलन के बिना कोई भी व्यक्ति प्रभावशाली कार्य नहीं कर सकता। एक औसत दर्जे के मालिक की यह आवश्यक योग्यता होती है कि वह कर्मचारियों को ऐसे ढंग से काम करने दे कि जिससे उनका अपना मन संतुलित रहे। सबसे बड़े अधिकारी या मालिक का जो निजी सहायक—दायां हाथ हो, उस व्यक्ति का यह कर्तव्य होता है कि वह ऐसी कोई बात न होने दे, जो अधिकारी या मालिक को चिंतित और बेचैन कर दे। कारण यह है कि चिंता और बेचैनी से कार्य-सामर्थ्य नष्ट होता है अर्थात् कार्य प्रभावशाली ढंग से हो ही नहीं सकता।

लगातार क्रुद्ध होने और डांटने-डपटने से हो सकता है कि कर्मचारी ऐसी जल्दबाजी का शिकार हो जाए कि वह कहीं रुके ही नहीं, भले ही काम बिगड़ता चला जाए—गलत ही होता चला जाए।

व्यापारी तथा उद्योगपति यदि जल्दबाजी और व्यर्थ की त्वरा से, तेजी से बचें, तो अपनी बेकार चली जाने वाली बहुत-सी कार्यशक्ति को बचा सकते हैं। ऐसी दशा में जब वे दिन का कार्य समाप्त करके कार्य-स्थान से बाहर आएंगे, तो उनका मन शांत और संतुलित होगा।

मित्रवर! यह कोई असंभव बात नहीं है कि जब आप दिन का कार्य समाप्त करके कार्यालय को बंद करें, तो अपने आपसे कहें—'बस, दिन का काम हो चुका। आज और अधिक काम नहीं। अब मैं जाकर विश्राम करूंगा!'

यदि आप अपने दिन के कार्य से कुछ देर पहले शांतचित्त हो जाएं, कार्य का वेग धीमा कर दें और शरीर तथा मन शिथिल करके शांत होने दें, तो आप देखेंगे कि आप अपनी मानसिक शक्ति की तथा रचनात्मक ऊर्जा की कितनी बचत करते हैं। ❑

निर्भय बनो, उत्साह से जीओ पुस्तक से साभार

जीवन सफर में मील के पत्थर

मानस भारतीय

- समय से पहले जगना सदैव लाभदायक रहता है। समय के बाद जगना सदैव नुकसानदायक। जैसे, फल गिरने से पहले झोली फैलाने पर फल झोली में ही गिरता है—और फल गिरने के बाद झोली फैलाने पर हाथ कुछ नहीं लगता।
- खुले में छोड़ देने से जैसे, रेशम की रुई का एक-एक रेशा बिखरकर उड़ जाता है, वैसे ही, अनियंत्रित इच्छा करने वाले व्यक्ति का जीवन, रेशा-रेशा होकर रह जाता है।
- सुगंध हवा के साथ ही फैलती है। किंतु दुर्गंध, बिना हवा के भी फैल कर वातावरण को दूषित कर देती है।
- पागल के मुंह से निकली गाली का ज्यादातर लोग बुरा नहीं मानते। समझदार व्यक्ति के मुंह से गाली सुनना कोई नहीं चाहता। क्योंकि, एक के मन में गाली देने का कोई उद्देश्य नहीं, जबकि दूसरे के मन में गाली देने का उद्देश्य ही उद्देश्य है।
- पाप की कमाई को सुरक्षित रखने के लिए मजबूत ताले लगाए जाते हैं; किंतु मेहनत की कमाई की सुरक्षा के लिए ताले खुद-ब-खुद लग जाते हैं।
- रोज जागना, रोज खाना, रोज सोना—जीवन की गति नहीं, गति का एक भ्रम है। ऐसे ही जैसे, तालाब का पानी लहरों के रूप में दिन-रात चलता हुआ नजर आने पर भी, वहीं का वहीं रहता है।
- जिन्हें तुम अपना कहते हो, समय आने पर सबको छोड़ना पड़ता है। ऐसे ही जैसे, उंगलियों के बढ़े हुए नाखून और सिर के बढ़े हुए बाल समय-समय पर शरीर से अलग करने पड़ते हैं।
- कर्मठ लोग कभी सराहना की उम्मीद नहीं करते। जैसे दीपक बिना उजाले का इंतजार किए अविरल जलता रहता है।
- किसी काम को करने के लिए कोई सही समय नहीं होता। सही होता है उस काम को करने के लिए पर्याप्त जोश।

संकलन : **दिव्यार्थ सिंह**

कर्तृत्व की धार तेज करें

पदमचन्द पटावरी

किसी भी समाज, देश और परिवेश में कार्यकर्ता-शक्ति का महत्त्व सदैव सर्वोपरि रहा है। ऐसा इसलिए भी अभिप्रेत है कि कर्तृत्व की हर मंजिल अथक श्रम और सहकार मांगती है। यह तभी संभव है जब उस मिशन से जुड़ा हर कार्यकर्ता सर्वात्मना समर्पित होकर कार्य करे। तेरापंथ धर्मसंघ में गुरुदेवश्री तुलसी का युग कार्यकर्ता-शक्ति के निर्माण की दृष्टि से स्वर्णिम युग रहा। उन्हें कार्यकर्ता-शक्ति के रहनुमा के रूप में प्रतिष्ठित होने का श्रेय प्राप्त हुआ था।

आज कार्यकर्ता-पंक्ति पर बहुत सारे सवाल उठ खड़े होते हैं। कार्यकर्ता ऐसा हो जिसमें विनम्रता, सेवा-परायणता, श्रद्धा, समर्पण एवं चिंतनशीलता जैसी विशेषताएं अनिवार्य रूप से अपेक्षित हैं। आज कार्यकर्ता की गुणवत्ता गौण होती जा रही है, सिर्फ ऊपर लगा हुआ आकर्षक लेबल ही उसकी पहचान बन रहा है। जो हकीकत से काफी दूर है। आज राजनीतिक क्षेत्र में, सामाजिक क्षेत्र में और यहां तक कि धार्मिक क्षेत्र में भी कार्यकर्ता-शक्ति का उद्भव, प्रणयन करते समय सिफारिशें प्रभावी होने लगी हैं या यह कहें कि उनकी पहचान करते समय कहीं न कहीं भूलें हो रही हैं। हमें कार्यकर्ताओं को सुचिंतित, सघन प्रशिक्षण के बीच से गुजारना होगा और जब कार्यकर्ता निखरकर सामने आएगा तब उसके सम्यक् नियोजन से पूर्व एक बार उसे कसौटी पर कसकर उसकी जांच-परख की भी अपेक्षा रहेगी। ऐसा इसलिए जरूरी है कि कार्यकर्ता समाज की रीढ़ हैं। उन पर इस बात की जिम्मेदारी है कि वह समाज को ऐसी दिशा दें, जो समाज के सर्वांगीण विकास की मंजिल को सही मुकाम दे सके।

समाज एवं समाज से जुड़े संगठनों का भी यह फर्ज बनता है कि वे कार्यकर्ता-शक्ति के स्वाभिमान को हर स्तर पर सुरक्षित रखे। उसे विखंडित होने से बचाएं। जो समाज कार्यकर्ताओं की स्वस्थ परंपरा का बखूबी निर्वाह नहीं कर सकता, वह समाज अपने दायित्व से तो च्युत होता ही है, साथ ही अपनी चिरंजीविता पर सवालिया निशान खड़े करता है।

कार्यकर्ताओं की सुलझी हुई पंक्ति तैयार खड़ी है, पर फिर भी समाज की गाड़ी बार-बार अटकती है। यह देखकर चिंतन उभरता है कि हम कार्यकर्ता किस कार्य के लिए सुयोग्य हैं? इस बात का निर्धारण करना व्यवस्था-पक्ष का दायित्व है। उनका व्यवस्था कौशल ही कार्यकर्ता को प्रतिष्ठित कर सकता है और उन्हें सौंपा हुआ कार्य भी सफलता की सीढ़ियों का आरोहण कर सकता है।

कभी-कभी ऐसे वाकिए भी देखने को मिलते हैं, जब स्वस्थ एवं समर्पित कार्यकर्ता अकारण प्रताड़ित होता है। राजनीतिक दलों में तो ऐसी घटनाएं आम बात हो गई हैं, जबकि यह दूषित हवा समाज के अन्य क्षेत्रों को भी अपनी गिरफ्त में ले रही है। यहां यह कहना तर्कसंगत है कि जिन लोगों के द्वारा कार्यकर्ता-शक्ति अकारण प्रताड़ित होती है, वे भले ही थोड़े वक्त के लिए विजयी अनुभव करें पर उनका अंतर्मन अवश्यमेव अपराधबोध से ग्रसित होता है और उन्हें चैन से नहीं रहने देता।

आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने तेरापंथ धर्मसंघ के पटल पर कार्यकर्ताओं की चर्चा करते वक्त बार-बार जीवनदानी कार्यकर्ताओं की अपेक्षा की है और समाज का ध्यान आकृष्ट किया है। यह अपने ढंग की प्रशस्त सोच है, जिसकी अपेक्षा समाज भी अनुभव कर रहा है, पर समाज के अगुआ व्यक्तियों एवं संगठनों को

इस पक्ष पर विचार करना होगा कि उन जीवनदानी कार्यकर्ताओं की व्यक्तिगत अपेक्षाएं कौन पूरी करेगा। यदि वह कार्यकर्ता समाज के लिए पूर्णकालिक समर्पित होगा तो उसके घर-परिवार की अनिवार्य आवश्यकताओं की संपूर्ति कहां से होगी? यदि इस तथ्य से वे बेखबर हैं, तो जीवनदानी कार्यकर्ताओं की परिकल्पना आकाश-कुसुमवत् बनी रहेगी। यही नहीं, यदि कोई कार्यकर्ता अपना संपूर्ण वक्त देकर अपनी जरूरतों के लिए मानदेय प्राप्त कर रहा है, ऐसी स्थिति में समाज उसे किस दृष्टि से देख रहा है, यह भी समझना होगा। कटु सत्य यह है कि समाज की सोच अभी बहुत बौनी है। यहां पर बात-बात में अर्थ के तराजू पर तौलने की प्रवृत्ति जड़ें जमा रही है। अर्थ सिरमौर है और बुद्धि, विवेक, समय-दान आदि दूसरी पंक्ति पर खड़े हैं। इस विकट परिस्थिति से समाज को निजात दिलाने की आवश्यकता है।

देश का बहुचर्चित सांस्कृतिक संगठन राष्ट्रीय स्वयं-सेवक संघ एक नजीर है, जहां जीवनदानी कार्यकर्ताओं की सुदृढ़ पंक्ति देखी जा सकती है। यहां कार्यकर्ता समादृत होते देखकर कुछ सीखा जा सकता है। इस संगठन में कार्यकर्ता के योगक्षेम को कभी भुलाया नहीं जाता। कम्युनिस्ट जगत में भी कैडर आधारित कार्यकर्ता-शक्ति देखी जा सकती है। उनकी कार्य-पद्धति, संचालन, कार्यक्षेत्र को विमर्श का विषय न बनाएं, पर मुख्य बात यह है कि इन संगठनों में भी उनका कार्यकर्ता सर्वोच्च सम्मान और अहमियत प्राप्त करता है और संगठन उनके संरक्षण के प्रति पूर्णतः जिम्मेदार होता है।

जो कार्यकर्ता वर्षों-वर्षों तक अपनी सेवाएं समर्पित करते हुए चले आ रहे हैं, वे अपने लक्ष्य के प्रति सर्वात्मना समर्पित एवं प्रतिबद्ध हैं। कभी-कभी उन्हें लगता है कि वे जिस मिशन से जुड़े हैं, वह अपनी दिशा से अलग-थलग हो रहा है। ऐसी विकट स्थिति में यदि वे अंधानुकरण की जगह उस समस्या के सम्यक् निराकरण की दृष्टि से शालीनता से अपना प्रतिकार प्रस्तुत करते हैं, तो क्या उस कार्यकर्ता को बागी समझा जाए अथवा उसे विश्वास में लेकर उसके सुझावों एवं चिंतन को विचारार्थ स्वीकार किया जाए? यह कम महत्त्वपूर्ण बिंदु नहीं है।

यद्यपि राजनीतिक गलियारों में पनप रही उठा-पटक ने उस क्षेत्र के सच्चे और ईमानदार कार्यकर्ताओं के लिए इम्तिहान की घड़ी उपस्थित कर दी है, क्योंकि अधिकांशतः खोटे सिक्के चल रहे हैं और खरे व सटीक व्यक्ति मिट रहे हैं। उनकी आवाज की अनदेखी की जा रही है, पर दूसरे क्षेत्रों में पनप रही इस प्रवृत्ति को तो हर स्थिति में रोकना ही होगा।

प्रखर मीडिया के इस युग में किसी क्षेत्र-विशेष की क्रिया-प्रतिक्रिया, अच्छाई-बुराई दूसरे क्षेत्रों को अतिशीघ्र प्रभावित किए बिना नहीं रहती। यह सच है कि अच्छाइयां कम प्रसार पाती हैं और बुराइयों का प्रसरण त्वरित गति से होता है। यही कारण है कि कार्यकर्ता-शक्ति भी इन विसंगतियों से प्रभावित होती रहती हैं और इसके साथ जुड़े अनेक प्रश्न समाज के हर तबके को प्रभावित कर रहे हैं।

आचार्यश्री महाप्रज्ञ का प्रेरक कथन है कि आज उन कार्यकर्ताओं के अनुभवों से अनुप्राणित होने के दायित्व को विस्मृत न करें जिन्होंने कि वर्षों के वर्ष खपाए हैं और अपनी अनुभूतियों को सुदृढ़ किया है। आज भी समाज चाहे तो उनके अनुभवों से लाभान्वित हो सकता है। यह तब संभव है जब यथोचित आदर भाव के साथ नई पीढ़ी के कार्यकर्ता अपने कर्तृत्व को पुरानी पीढ़ी के कार्यकर्ताओं की अनुभूतियों की रोशनी से अनुप्राणित करें और अपने कार्य-कौशल की धार को तेज करें।

संपूर्ण कार्यकर्ता-शक्ति के लिए यह कसौटी की घड़ी है। वे स्वयं का हर स्तर पर आत्म-निरीक्षण करें एवं एक आदर्श कार्यकर्ता के रूप में स्वयं को न सिर्फ प्रस्तुत करें वरन् आचार्य महाश्रमणजी की अनुशासना में अपनी क्षमताओं का सम्यक् नियोजन संघ, समाज और राष्ट्र के लिए प्रस्तुत कर स्वयं में आत्मतोष का अनुभव करें ताकि समूचा राष्ट्र इनके अवदानों से लाभान्वित हो सके। ❑

मजाकिया शीशा

विनोगी हरि

नुमाइश में एक ऐसा आदमकद शीशा रखा हुआ था, जिसके आगे हमेशा लोगों की भीड़ लगी रहती थी, खासकर बच्चे अपनी अद्भुत शक्लें देख-देखकर बेहद हंसते और हंसाते थे। शीशा वह मजाकिया था। शक्लों को वह अजीब-अजीब बना देता था। उसमें चेहरे, पेट और हाथ-पैर काफी लंबे बन जाते। कभी चौड़े और चपटे, और कभी गोल-मटोल। अपने आपको उन अजीब शक्लों में पहचानना मुश्किल हो जाता था।

नुमाइश में रखे उस शीशे के बारे में सुना, तो मैं सोचने लगा कि यह कोई करामात की बात नहीं। उसे इस प्रकार का बनाया गया है, ताकि उसमें अपनी शक्लें देखनेवाले चक्कर में पड़ जाएं। जरा और गहराई से सोचा तो ऐसा लगा कि औरों की तो नहीं कहता, पर मैं आप ही वैसा शीशा बन गया हूं और अपनी किस्म-किस्म की शक्लें उसमें देखता रहा हूं।

शीशा भी मैं ही, और उसमें शक्ल देखनेवाला भी मैं ही। अपनी शक्ल देखकर मैं कभी अचंभे में पड़ जाता, कभी डर जाता और कभी हंस पड़ता था। अपनी अजीब-अजीब शक्लें बनानेवाला मैं खुद ही था। भुलावे के दर्पण में मेरी ही रची भांति-भांति की परछाईं पड़ती रहती थीं।

मेरी साहित्यिक कृतियों का क्षेत्र कितना विस्तीर्ण है, वे कितनी ऊंची हैं, कितनी लंबी हैं, इसका अनुमान नहीं कर सकता था। अतिशयोक्ति से पूर्ण प्रशंसा ऊंचाई को और लंबाई को और भी बढ़ा देती थी। कल्पना के पंख चिपकाकर उड़ने लगता था कि मेरे रचे 'वीर-सतसई' के चंद दोहे भूषण और सूदन की कई पंक्तियों से, और भक्तिरसपूर्ण सूरदास के पदों से न सही, पर भारतेन्दु के पदों से तो टक्कर ले ही सकते हैं, और पद्यात्मक गद्य-गीत और व्यंग्यात्मक लेख तो शीर्षस्थ हैं ही। इस ठगिनी धारणा ने अहंकार-दर्पण में मेरी शक्ल को बहुत लंबा बना दिया, और वह शक्ल के साथ-ही-साथ पतली भी दीखने लगी। उस लंबाई में, क्योंकि सार-तत्त्व या ठोसपन कुछ भी नहीं था।

टेढ़ी-मेढ़ी ऐंचातानी दीखनेवाली शक्ल का कारण था समाज-सेवा की मनोवृत्ति। बताना मुश्किल है कि कथित जन-सेवा का चस्का यों ही लग गया था, या लगा दिया गया था। समाज के विविध अंगों को देखा और मन हो आया कि सभी का उत्थान किया जाए, सो कभी उधर खिंच जाता, कभी इधर और कभी किधर। फुरसत नहीं मिलती थी मन को कहीं भी केंद्रित करने की।

गर्व झुलाता रहता कभी आगे को, कभी पीछे को, और कभी ऊंचे चढ़ा देता, कभी नीचे उतार देता। स्थिर नहीं होने देता था। शीशे में इसलिए टेढ़ी-मेढ़ी शक्ल दीखती थी। बड़ी ही विद्रूप।

और, शक्ल के चौड़ी-चपटी और गोल-मटोल दीखने का भी कारण था। अहंकार बिठा देता था कभी-कभी ऐसे आसन पर, जिसका अधिकारी कोई सच्चा धर्मज्ञ होता है। स्वप्न देखने लगता था कि उस आसन पर बैठकर जिज्ञासुओं के प्रश्नों के उत्तर दे रहा हूं, धर्म और अध्यात्म पर प्रवचन कर रहा हूं, और लोग श्रद्धा-भक्ति से उसे सुन रहे हैं। प्रवचन में गीता और उपनिषदों और धम्मपद की सूक्तियां, और संत-महात्माओं के जीवन-दृष्टांत गूंथ दिया करता था, जैसे धागे में भांति-भांति के फूल। लेकिन उस प्रवचन का मेरे अपने आपके लिए कुछ भी प्रयोजन सिद्ध नहीं होता था। शक्ल अलबत्ता उस वक्त उस शीशे में अपने आप चपटी और गोल-मटोल दिखाई देने लगती थी।

ऐसी-ऐसी हास्यास्पद शक्लों के देखने का मैं आदी हो गया था या जबरन आदी बना दिया गया था। अपनी सही सूरत-शक्ल पर पर्दा डाल लिया था। असली रूप भूल गया था। साहित्यकार, समाज-सेवक और धर्मज्ञ का स्वांग भर लेने के कारण भ्रांतियों को न्योता दिया था और उन्हें कोरा लौटा देना संभव नहीं था।

चाहता हूं कि उस मजाकिए शीशे को तोड़कर फेंक दूं। मगर मुश्किल है। जिस कांच का वह बना है, और जिसको बनानेवाला मैं आप ही हूं, उसे कैसे तोड़ूं और कैसे फेंक दूं? यही समस्या है। हल इसका निकालना होगा, और जल्द-से-जल्द। ❐

सही सीख

देखना है तो –	खुद को देखो।
दिखाना है तो –	कौशल दिखाओ।
करना है तो –	भलाई करो।
पाना है तो –	इज्जत पाओ।
देना है तो –	दया, प्रेम दो।
बोलना है तो –	सत्य वचन बोलो।
बनना है तो –	अच्छे इनसान बनो।
हारना है तो –	दुष्कर्म से हारो।
जीतना है तो –	इन्द्रियों को जीतो।
मरना है तो –	यशस्वी बनो।
खाना है तो –	गम खाओ।
सुनना है तो –	आगमवाणी सुनो।

शब्द–नियति

अपने विचारों पर नजर रखिए
– वे शब्द बन जाते हैं।
अपने शब्दों पर नजर रखिए
– वे कर्म बन जाते हैं।
अपने कर्मों पर नजर रखिए
– वे आदत बन जाते हैं।
अपनी आदतों पर नजर रखिए
– वे चरित्र बन जाते हैं।
अपने चरित्र पर नजर रखिए
– वही आपकी नियति बन जाते हैं।

प्रस्तुति–**इन्दरचन्द बैद, नोखा**

❐

कानून बेचारे

जतनलाल रामपुरिया

अराजकता की जिन परिस्थितियों से आज हर अच्छा नागरिक प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से त्रस्त और संतप्त है, उनके विषय में एक विज्ञ पाठक और चिंतनशील नागरिक के रूप में आपसे कुछ गंभीर चर्चा इन पंक्तियों का उद्देश्य है। उल्लेख करूं ऐसा कुछ सामाजिक जीवन मेरा नहीं रहा है। विगत कुछ वर्षों से अलबत्ता कई सार्वजनिक संस्थाओं की गोष्ठियों में आता-जाता रहा हूं। संस्थाएं अपनी मीटिंगों में मुझे क्यों बुलाती हैं, मैं नहीं जानता, पर उनके माध्यम से मुझे जरूर अनेक व्यक्तियों के संपर्क में आने का लाभ मिला। उधर मेरा व्यवसाय भी विभिन्न वर्गों के एक बड़े समुदाय के साथ मुझे अंतरंग वार्तालाप का अवसर देता है।

अलग-अलग जगहों में रहनेवाले विभिन्न कार्यों में संलग्न इतने सब लोगों से बातचीत के मध्य, जनमानस में आए एक बड़े परिवर्तन को मैंने लक्ष्य किया है। लोग अब उल्लास और उमंग की बातें नहीं करते। मौज-शौक और पिकनिक के कार्यक्रम उतने खुले दिल से नहीं बनाते। आनंद की अनुभूतियों की कथाएं अब कम लोगों के पास रही हैं। अवचेतन मन में व्याप्त भय और बहुत द्रुतगति से बढ़ती हुई असुरक्षा की भावनाएं ही अब आपसी वार्तालाप में व्यक्त होती हैं। दुर्गा पूजा जैसे त्योहारों की झिलमिल करती बत्तियां और दीपावली के टिमटिम करते दीपक भी जबरन चंदा वसूलने वालों के दुर्व्यवहार के कारण सहमे-सहमे से दिखते हैं।

अपशब्दों और धमकियों के बीच बलात् रुपया ले लिए जाने का अपमान तो हर आदमी सह चुका है। हर वर्ष ही सहता है। आवश्यक कार्यवश निकले, बल्कि आपात चिकित्सा हेतु किसी बीमार को लेकर जा रहे वाहन को भी हाइ-वे पर रोक कर बलात् रुपया वसूलने वाले गिरोह किस मोड़ पर प्रेत की तरह प्रकट होंगे, कोई नहीं जानता। बैंकों में डकैतियां जहां रोजमर्रा की घटनाएं हैं, वहां राह चलते आदमी से छीना-झपटी का उल्लेख निरर्थक है। सर्वथा निर्दोष व्यक्तियों पर बलप्रयोग और उनके साथ मारपीट की दो घटनाओं के बीच लंबा

अंतराल नहीं रहता, बल्कि यह भी कुछ क्षेत्रों में तो हर दिन की कहानी है। अकारण ही राह चलते व्यक्ति को सता कर, शारीरिक आघात पहुंचाकर आनंद का अनुभव करना नई संस्कृति का रूप ले रहा है।

त्योंहारों पर बने बड़े-बड़े पंडाल सड़कों को क्षति पहुंचाते हैं, यातायात को अवरुद्ध करते हैं और आसपास रहनेवाले लोगों के लिए क्लेश का कारण बनते हैं। इससे भी अधिक अनिष्टकारी इसका दूसरा पक्ष है। इन आयोजनों के लिए चंदा मांगने की परंपरा ने बिना मेहनत किए पैसा बटोरने की वृत्ति को जन्म दिया है। गुंडा टैक्स, रंगदारी भत्ता, प्रोटेक्शन मनी आदि इसी वृत्ति की प्रतिध्वनियां हैं और अब तो अल्पवय बच्चे भी गुट बनाकर समय-असमय आवासीय घरों में अधिकार और अनादर की भाषा में चंदा मांगने बेधड़क चले आते हैं। इसी खुली छूट ने युवा पीढ़ी को द्रुतगति से उच्छृंखलता और अनुशासनहीनता की ओर धकेला है। परिणामतः आतंक द्वारा अपनी प्रभुता और सत्ता का प्रदर्शन आजीविका का सबसे सुगम रास्ता लगने लगा है। हर गली में असामाजिक तत्त्वों का वर्चस्व है। थानों के साये में बम और हथियार बनाने के कारखाने पनपते हैं। पुलिस विभाग अपराधियों का अभयारण्य है। देश के संविधान ने जिन्हें रक्षक की वरदी पहनाई, सुरक्षा का दायित्व सौंपा–सहायता की याचना लेकर गई निरीह जनता को वे लोग ही अन्याय, अत्याचार, शोषण और भय का पर्याय लगते हैं।

रोजमर्रा की ये छोटी-मोटी खुजलियां भी देखिए कितने गहरे घाव करती हैं।

यातायात के नियमों का उल्लंघन जितना सरकारी वाहन करते हैं, निजी वाहन उसका दस प्रतिशत भी नहीं करते। मगर बड़ी दुर्घटना के अपवादों को छोड़कर, सरकारी चालक प्रतिरक्षित हैं। दूसरी ओर जनता के दस-दस स्कूटरों को एक साथ क्रेन से झुलाकर ट्रैफिक पुलिस हफ्तों/महीनों तक उन्हें कूड़े की तरह डम्प कर देती है। सजा का यह अविवेकपूर्ण, पीड़ादायक और तानाशाही रूप भी गले उतर जाता अगर अधिकारी-कर्मचारी वर्ग में इसके साथ देश की संपत्ति की सुरक्षा के भाव जुड़े होते! मगर उलझनों की सृष्टि ही जहां आय का स्रोत बन जाए, वहां ऐसे कष्टों का महाग्रंथ भी तैयार हो जाए तो आश्चर्य क्या?

सरकारी विभागों द्वारा निर्गत रिफंड-चेक रिजर्व बैंक यह नोट लगाकर वापस कर देता है कि 'एडवाइस' नहीं मिला। ऐसे में करदाता का विदेशी बैंक उसका अकाउंट पांच सौ रुपए से और अगर वह कोई छोटा बैंक है तब भी सौ रुपए से डेबिट कर देता है। भूल संबंधित अधिकारी और उसके मातहत कर्मचारियों की होती है, पर उसकी सजा उनको नहीं, करदाता को मिलती है।

नोटों पर रिजर्व बैंक के गवर्नर की यह घोषणा अंकित होती है 'मैं धारक को एक सौ रुपए अदा करने का वचन देता हूं।' फिर भी एक बैंक द्वारा प्राप्त नोटों की गड्डी में से दूसरा बैंक दो-चार नोट यह कह कर स्वीकार नहीं करता कि ये कटे-फटे हैं। राजकीय मुद्रा (लीगल टेंडर) को अस्वीकृत करना अपराध है, पर सरकार जितनी सहजता से कानून बना लेती है, उतनी सहजता से उन पर अमल नहीं करवा पाती। उसका अपना अधिकारी वर्ग तो जनता को सहूलियत या कुछ अधिकार देनेवाले कानूनों को जानने की आवश्यकता ही नहीं समझता।

दूसरी ओर, एनफोर्समेंट और रेवेन्यू इंटैलिजैंस डिपार्टमेंट एवं कस्टम, आयकर व बिक्रीकर विभाग भी तानाशाही के छद्म रूप हैं। राजस्व से संबंधित विभागों में यंत्रणाकक्ष किसी भी सभ्य देश के लिए लज्जा की बात होनी चाहिए, मगर यहां जिन विभागों में वह है, वे उस पर गर्व करते हैं। इन विभागों के अधिकारियों के साथ रूखा व्यवहार अथवा थोड़ा-सा तर्क, चाहे वह कितना ही युक्तिपूर्ण और कानून सम्मत हो 'रेड और सर्च' का बाना पहनकर आदमी के जीवनकाल का दस-बीस प्रतिशत समय निगल सकता है। अव्यावहारिक कानून, उन्हें पालन करवाने के अव्यावहारिक तरीके और दूरगामी दृष्टि के लिए

सुचिंतित अर्थनीति के अभाव ने देश के समूचे उद्योग और व्यापार को, उनकी प्रबल संभावनाओं के उपरांत भी पंगु बना दिया है। गरीबी और बेरोजगारी अगर ऐसे देश में न रहें तो और कहां जाए?

राजनेताओं और प्रशासन द्वारा अपने अधिकारों का दुरुपयोग, नागरिकों के हित में बनाए कानूनों की अवहेलना एवं हिंसा, ध्वंस, अराजकता और अनुशासनहीनता को खुला समर्थन देने की ही नहीं, बल्कि उन्हें पोषित करने की वृत्ति ने एक गर्भस्थ शिशु के मानस को भी दूषित किया है। पांचवीं-छठी कक्षा में पढ़ रहे किशोरों द्वारा सुनियोजित अपराध और हिंसक वारदातें हमारे पतन की पराकाष्ठा है। स्कूल के कई दिन बंद हो जाने की आशा में दस-बारह वर्ष के बच्चों द्वारा वृक्ष से लटका कर अपने सहपाठी की निर्मम हत्या करने जैसी घटनाएं भी अब जनमानस को नहीं झकझोरतीं। हर अपराध बड़ा स्वाभाविक लगने लगा है। मेडिकल, टेक्नोलॉजिकल, बिजनैस मैनेजमेंट आदि विषयों में उच्च शिक्षा प्राप्त करने हेतु पहुंचे नवागंतुकों की रेंगिंग का अत्यंत क्रूर व बीभत्स रूप 'स्पोर्ट' में शामिल है। जब तक एक छात्र यंत्रणा के कारण मर नहीं जाता या अपने कष्टों से छुटकारा पाने के लिए विवश होकर अथवा अपने साथ घटी घिनौनी हरकतों से उत्पन्न शर्मिंदगी के वशीभूत हो आत्महत्या नहीं कर लेता, तब तक ज्ञान के इन मंदिरों में कौन-सी संस्कृति पनप रही है, कोई नहीं जान पाता।

कानून कितने निर्बल, कितने असहाय और कितने बेबस हैं? परिवहन बसें, टैक्सियों के मीटर और स्टेशन का कुली तक, बल्कि पार्किंग फीस वसूलने जैसे बिना मेहनत के काम में हर महीने दस-बीस हजार रुपए कमा लेनेवाले लड़के भी फूहड़ता का प्रदर्शन करने में लगे हैं। प्रजा को अनुशासन की प्रेरणा शासक के अपने आचरण से मिलनी चाहिए– यह कथन किसी चिंतक और द्रष्टा का है। इस सुनहरे नियम की अवहेलना ने जीवन के हर पहलू को जटिल और कुटिल बना दिया है। आदमी जन्म लेता है नर्सिंग होम में, मृत्यु उसे श्मशान पहुंचाती है। जन्म और मृत्यु के बीच में है एक राशन की दुकान। नर्सिंग होम, राशन की दुकान और जहां कहीं भी जाएं, एक भी पड़ाव ऐसा नहीं जहां मानवीय संवेदना के दर्शन होते हैं। विचित्र कुछ घटा है कि सरोवर ज्यों का त्यों हाजिर है, मगर कमल एक में भी नहीं।

संविधान में कतिपय परिवर्तनों की चर्चा खबरों में है, पर संविधान कहीं दिखाई भी तो दे। देश स्वतंत्र हुआ है सत्ताधारियों के लिए, प्रशासकों के लिए, एक ट्रैफिक कांस्टेबिल के लिए और एक सरकारी चपरासी के लिए। आम आदमी की तो हर सांस आज ज्यादा परतंत्र है। उसके लिए कहां कोई संविधान बना है?

हमारे पास दो ही विकल्प हैं–

1. अन्याय और अपमान को अपना प्रारब्ध मानकर मूक पशु की तरह सब सहते रहें और अपने निर्लिप्त एवं उदासीन आचरण द्वारा व्यक्ति के ही मन की शांति भंग करनेवाली नहीं, बल्कि अपनी अंतिम परिणति के रूप में देश को ही विनाश के कगार पर पहुंचा देनेवाली प्रवृत्तियों को अप्रत्यक्ष रूप से पोषण और प्रोत्साहन देते रहें अथवा 2. भावी पीढ़ी के भविष्य को अंधकारमय बनानेवाली हर देशघाती प्रवृत्ति को, चाहे वह शासक द्वारा हो, किसी समुदाय द्वारा या एक व्यक्ति द्वारा, सब मिलकर सभ्य और शिष्ट तरीकों से विरोध और प्रतिकार करें, राजनेताओं को उनके दायित्व के प्रति सजग करें और सरकार को हमारे बच्चों के लिए एक स्वच्छ परिवेश में जीने-रहने का अधिकार प्रदान करने के लिए बाध्य करें।

दूसरे विकल्प पर आपका चिंतन प्रारंभ हो चुका है, यह मैं यहां बैठे हुए भी अनुभव कर रहा हूं कि अब मेरे पास कहने को सिर्फ एक बात बचती है।

आज के राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक परिवेश में एक व्यक्ति अथवा दस-बीस व्यक्ति मिलकर गहरी जड़ें जमाए बैठी ऐसी विकृतियों के उन्मूलन की दिशा में अपने संपूर्ण प्रयासों के उपरांत भी

किसी बड़ी सफलता की आशा नहीं कर सकते, पर हम अकेले नहीं हैं। हर व्यापार का अपना-अपना संगठन है। अखिल भारतीय स्तर की भी कुछ एसोसिएशन हैं। विभिन्न सेवाओं में लगी अनेक संस्थाएं हैं, नागरिक परिषद हैं और लायंस और रोटेरियंस जैसी क्लबें भी हैं। इन सब के सम्मिलित मंच से पुरजोर आवाज, गृह विभाग को अपने दायित्व के संपूर्ण निर्वहन हेतु विवश करते हुए ज्ञापन, प्रमुख अखबारों में एसोसिएशनों, संस्थाओं और क्लबों की ओर से जनता को उसके अधिकारों और प्रशासन को उसके दायित्वों का भान कराते हुए कुछ विज्ञापन और मुख्य चौराहों, बाजारों एवं सब थानों के सामने हमारे दृढ़ निश्चय को व्यक्त करते हुए दो-दो, चार-चार पंक्तियों का समर्थन और सहयोग न्याय के दरवाजे पर हमारी दस्तक को कुछ बहरे कानों तक भी शायद पहुंचा दे?

सफर लंबा है, राह कंटीली, पर हमारा निश्चय, हमारा विश्वास और हमारे संयुक्त प्रयास हमें गंतव्य पर पहुंचाएंगे ही। गांधीजी ने कहा था–'न्याय उनकी सहायता नहीं करता जो ऊंघते रहते हैं। वह उन्हीं की मदद करता है जो सजग और सतर्क रहते हैं।' इसका अर्थ इतना ही है कि देश और समाज के प्रति हम अपने कर्तव्यों को समझें और उन्हें पूरा करने के लिए तत्पर रहें।

यह भी हमारे कर्तव्यों का भाग होगा कि हम सब अपनी-अपनी सीमा में, हर अन्याय पर अपनी आपत्ति जताएं और जिस एसोसिएशन और संगठन तक हमारी पहुंच है उस पर सरकारी विभागों, थानों, बैंकों, इंश्योरेंस कंपनियों आदि में निरंतर बढ़ रही अनियमितताओं का प्रतिरोध करने हेतु दबाव डालें, उन्हें अंत तक लड़ते रहने के लिए विवश करें। अपने अधिकारों की रक्षा हेतु इतना-सब तो हमें करना ही होगा।

अधिकार अपने कर्तव्यों और दायित्वों का निर्वाह किए बिना प्राप्त नहीं होते। घर बैठे गंगा किसे मिलती है? गंगा के लिए 'भगीरथ प्रयत्न' जरूरी है। ❑

सही दिशा : सही समाधान

समस्याओं में एक बड़ी समस्या है उपभोक्तावादी दृष्टिकोण की। इस दृष्टिकोण को बदलने के लिए पानी-बिजली के अपव्यय को रोकने का निर्देश है। प्रदूषण से बचने के लिए यात्रा को सीमित करने का संकेत है। संग्रह की मनोवृत्ति को नई दिशा देने की दृष्टि से विसर्जन का सूत्र दिया गया है। इन सूत्रों के माध्यम से आचार्यश्री ने श्रावक के चौदह नियमों का नवीनीकरण कर नौ नियम सुझाए हैं। वे वर्तमान युग के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण हैं–

खाद्यों की सीमा वस्त्रों का परिसीमन,
पानी-बिजली का हो न अपव्यय धीमन्!
यात्रा-परिमाण मौन प्रतिदिन स्वाध्यायी,
हर रोज विसर्जन अनासक्ति वरदायी।
हो सदा संघसेवा सविवेक सफाई,
प्रतिदिवस रहे इन नियमों की परछाईं।।

बहुसंख्यकों द्वारा अल्पसंख्यकों का दमन

लेव तोलस्तोय

हमारे समय की बहुसंख्यक जनता यह देख रही है कि उसका दुर्भाग्य तेजी से बढ़ रहा है। अपनी जिंदगी की अवधारणा के आधार पर अपनी मुक्ति का उन्हें एक ही तरीका नजर आता है। इसे वे तर्कसम्मत तरीका कहते हैं। वह है : बहुसंख्यकों द्वारा अल्पसंख्यकों का दमन।

वर्तमान स्थिति के बने रहने से लाभान्वित होने वाले लोग इस स्थिति को उचित ठहराते और ऐसा करते समय बल का प्रयोग भी करते हैं। धर्म-संगठन इसकी अनुमति भी दे देता है। साथ ही, जो लोग वर्तमान दशा में बदलाव की इच्छा रखते हैं, उन्हें भी हिंसा का सहारा लेना पड़ता है, जिससे वे लोग नए राज्य को पुराने राज्य की जगह स्थापित कर सकें। उनका मानना है कि यह नया राज्य बेहतर होगा।

विश्व में क्रांतिकारियों और प्रति-क्रांतिकारियों की संख्या को नहीं गिना जा सकता है। अगर सामाजिक स्वरूप में बदलाव आता है, तो भी उसकी नींव तो पुरानी ही बनी रहती है। बहुसंख्यकों का अल्पसंख्यकों पर वर्चस्व, भ्रष्टाचार, झूठ, दमन का भय, दासता, क्रोध और बहुसंख्यकों की क्रूरता–ये सारी बातें पहले जैसी ही रहती हैं–बल्कि और ज्यादा फैलती और विकसित होती हैं।

आज क्या हो रहा है? यह सब-कुछ व्यर्थता का ही पक्का सबूत है। लोगों को एकजुट करने के लिए हिंसा को जरीया बनाया जा रहा है। राजमार्गों पर लूट, पुलिसवालों, अफसरों, जासूसों की हत्याएं, उच्च संस्थाओं पर हमला–जैसी घटनाएं जो पहले लगातार होती थीं–अब बिरले ही कभी-कभार होती हैं। मगर मृत्युदंड और फांसी पर लटकाए जाने की संख्या लगातार बढ़ रही है।

पिछले दो सालों में उन्होंने लोगों को गोली से उड़ाने एवं फांसी देने को नहीं रोका है। प्राणदंड पाने वालों की संख्या तो हजारों में भी नहीं गिनी

जा सकती है। हजारों लोग क्रांतिकारी बमों से मारे गए थे। राज्य के नेताओं द्वारा मारे गए लोगों की संख्या क्रांतिकारियों द्वारा मारे गए लोगों की तुलना में कहीं ज्यादा है। राज्य के नेता सोचते हैं कि वे जीत गए हैं और उन्होंने विजय प्राप्त कर ली है। ये लोग कभी इस बात पर विचार नहीं करते कि वे अपने झूठे अस्तित्व को हिंसा के द्वारा और हिंसा को झूठ के द्वारा ही बनाए रख सकेंगे।

सभी राजनीतिक मतों की समस्या एक ही है। इन राजनीतिक मतों में सर्वाधिक प्राचीन से लेकर सर्वाधिक नवीन मत भी शामिल हैं, जिन्होंने मनुष्य को वर्तमान दयनीय स्थिति में पहुंचा दिया है। वह है: हिंसा के बल पर मनुष्य को समाज में बनाए रखना और वर्तमान सामाजिक संगठन और इसके द्वारा थोपी गई आचार-संहिता को अपनाने के लिए बाध्य करना।

यह तो निश्चित है कि व्यक्ति को उसकी इच्छा के विरुद्ध किसी अन्य दिशा में बलपूर्वक प्रवृत्त किया जा सकता है। पशु और आवेगों द्वारा निर्देशित मनुष्य इसी प्रकार कार्य करते हैं। यह स्वाभाविक और समझ में आने वाली बात है। कोई भी यह तर्क कैसे मान ले सकता है कि हिंसा के सहारे हम किसी भी व्यक्ति से जो काम करवाना चाहें, करवा सकते हैं?

दूसरों को दबाने में जबरदस्ती की जाती है। कभी यह जबरदस्ती नुकसान पहुंचाने, कभी मौत की धमकी के रूप में होती है, ताकि लोग अपनी इच्छा के विरुद्ध काम करें। इसलिए ये लोग तभी तक अपनी इच्छाओं के विरुद्ध काम करते हैं, जब तक वे अपने-आप को दमनकारियों से कमजोर समझते हैं।

जिस पल वे खुद को शक्तिशाली समझने लगते हैं, वे न केवल आज्ञा मानने से इनकार कर देंगे, बल्कि अपने संघर्ष और भोगे गए दुःख से उन्हें परेशान करेंगे। वे सबसे पहले अपनी स्वतंत्रता प्राप्त करेंगे। अब उनकी बारी होगी और वे अपनी इच्छा को दूसरे लोगों पर थोपेंगे, जो उनसे असहमत होंगे। अतः यह बिल्कुल स्पष्ट है कि दमनकारियों एवं दमितों के बीच पैदा होने वाला संघर्ष अव्यवस्था और असंतोष को ही पैदा करता है। इस संघर्ष का उद्देश्य सामाजिक संगठन की ओर बढ़ना नहीं है।

हिंसा लोगों को एकजुट करने का जरीया है, यह एक झूठ है। अगर यह झूठ लंबे समय तक थोपा नहीं जा सका है, अगर इसे निर्विवादित सत्य व रणनीतिक सहमति की तरह पेश नहीं किया गया है, अगर हिंसा से लाभ उठाने वालों की तुलना में इस हिंसा के शिकार लोगों ने इसे सत्य की तरह स्वीकार नहीं किया है, तो इसके बारे में कुछ भी नहीं करना चाहिए—क्योंकि तब यह समझना चाहिए कि हिंसा की व्यर्थता को सभी जानते हैं। यह झूठ ईसाई युग से पहले भी था और तब से अपनी पूरी शक्ति के साथ बना हुआ है। मगर पहले के समय और आज के समय में एक अंतर है। तब व्यक्ति के मन में यह विचार नहीं था कि हिंसा लोगों को एक करने का जरीया है, जबकि आज यह सच हम लोगों के सामने पूरी तरह साफ है कि हिंसा लोगों को जुदा करने का जरीया है।

जिस पल लोग इसे समझेंगे, वे हिंसा से अलग होने का प्रयास किए बिना नहीं रह सकेंगे। यह प्रवृत्ति आज हर देश के दमितों में देखी जा सकती है। न केवल दमित लोग इस सत्य को देख पा रहे हैं, बल्कि दमनकारी भी इसके प्रति सचेत हैं। इसलिए जब दमनकारी कमजोर के प्रति हिंसा का प्रयोग करते हैं, तब वे अपने-आप को पहले की तरह भला एवं न्यायपूर्ण काम करते हुए महसूस नहीं करते हैं। अपनी पारंपरिक स्थितियों के आदी नेता और जनता, दोनों एक-दूसरे को इस झूठे तर्क से सहमत कराते प्रतीत होते हैं कि क्रूरता अनिवार्य और उपयोगी है। लेकिन, ये सभी मन में गहरे तौर पर पहले से ही महसूस करते हैं कि सहयोग के बजाय क्रूरता की उनकी गतिविधियां उन्हें उनके इच्छित लक्ष्य से दूर ले जा रही हैं। ❐

अनुवादक : **शंभू जोशी**

सकारात्मक सोच से गलत रास्ते बंद

डॉ हीरालाल छाजेड़ (जैन)

आचार्यश्री तुलसी के शब्दों में कुछ लोग अतीत में जीते हैं और भविष्य की उड़ान भरते हैं और जो नहीं किया उसके लिए पछतावा करते रहते हैं। कभी समय को कोसते हैं, कभी परिस्थितियों को दोष देते हैं और कभी अपने भाग्य का रोना रोते हैं, ऐसे लोग निषेधात्मक भावों के खटोले में बैठकर जीवन पूरा करते हैं। हंसते-हंसते संघर्षों का सामना करते हैं और धैर्य के साथ आगे बढ़ जाते हैं, अपनी मंजिल तक पहुंच जाते हैं, ऐसे व्यक्ति विधायक विचारों के धनी होते हैं।

आधुनिक युग चिंतन व चिंता में डूबे रहने वाले लोगों का माना जा सकता है। वैसे तो विचारों की श्रृंखला निरंतर मानव मस्तिष्क में अबाध गति से चलती ही रहती है। सोते-उठते अनेक प्रकार के विचारों की श्रृंखला का कहीं भी विराम नहीं लगता यहां तक कि ध्यान साधना में बैठे साधक का भी पीछा नहीं छूटता और विचारों से पूर्णतया मुक्ति नहीं मिलती। निर्विचारों की स्थिति बहुत चाहते हुए भी प्राप्त होने में बाधा आती है। नींद में भी विचार पीछा नहीं छोड़ते। विचार अनेक प्रकार के हो सकते हैं, अच्छे भी और बुरे भी, आशा और निराशा भरे, डर और निडरता के, शक्ति और कमजोरी के भी।

मानव मन में आनेवाले विचारों को हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं। अच्छे, आशा भरे, निडरता, शक्ति, उत्साह और सभी के प्रति अच्छी भावना से उत्पन्न विचारों को सकारात्मक-विधायक विचारों की श्रेणी में रखा जाता है। बुरे, निराशापूर्ण, डर-भय, कमजोरी, आशंका-द्वेषतापूर्ण व कषाय से जुड़े विचारों को नकारात्मक-निषेधात्मक श्रेणी की संज्ञा दी जाती है। नकारात्मक विचारों को कोई पसंद नहीं करता, सभी सकारात्मक विचारों से जुड़ना चाहते हैं, परंतु सोचने मात्र से ऐसा होता नहीं है। आइए, इस बात पर चिंतन करें कि नकारात्मक भावों पर कैसे बांध लगाएं?

सकारात्मक विचारों के लिए आवश्यक है—सम्यक् दृष्टिकोण। व्यक्ति की सोच सम्यक् होने पर वह सत्य को पकड़ेगा, कभी भी गलत रास्ते पर जाने

का प्रयत्न नहीं करेगा, क्योंकि उसकी सोच में परिवर्तन आ जाएगा। जीवन में बदलाव घटित होगा। सम्यक् दृष्टिकोण व सकारात्मक सोच धार्मिक दृष्टिकोण की पहचान है। अहंकार, छल-कपट, कषाय-क्रोध, लोभ-माया की वृत्ति उपशांत होने लगेगी। जीवन में बदलाव घटित होगा। इन लक्षणों से व्यक्ति की सोच भी सकारात्मक होगी, वह नकारात्मक भावों को मन में नहीं आने देगा या यों कहें नकारात्मक भाव मन में आएंगे ही नहीं। इसके विपरीत लक्षणों वाले व्यक्ति का दृष्टिकोण सम्यक्त्वी नहीं होगा और उसके मन पर नकारात्मक भावों का साम्राज्य होगा, क्योंकि कलुषित वृत्तियां सकारात्मक भावों के उत्पन्न होने में बाधक होगी।

सम्यक्दृष्टिकोण और सकारात्मक विचार एक दूसरे के पूरक हैं। मिथ्या दृष्टिकोण और निषेधात्मक भावों का रिश्ता भी अटूट है, अतः सही दृष्टिकोण ही मन के विचारों में परिवर्तन कर व्यक्ति को सही सोच प्रदान करते हैं। हमारी सोच ही हमारे भविष्य का निर्माण करती है। जैसा हम सोचेंगे वैसा ही बनेंगे। अच्छी सोच हर क्षेत्र में व्यक्ति को सफलता व विजेता बनाने में सहयोगी बनती है। विधायक सोच व्यक्ति को आशावादी, संकल्पवान, शक्तिशाली व परिश्रमी बनाती है। इसके विपरीत बुरे विचारों से ग्रसित व्यक्ति को बुरी कल्पनाएं निराशावादी, रोगी, बुढ़ापा, अवसाद आदि समस्याओं से ग्रसित बनाने में सहयोगी बनेगी।

जैन-धर्म के तीर्थंकर भगवान महावीर के सम्यक् व मिथ्या दृष्टिकोण को समझनेवाले व्यक्ति इस बात को अच्छी तरह जानते हैं। सकारात्मक सोच हमारे भविष्य को उज्ज्वल बनाती है। मन को उत्साह, आशा, उमंग, साहस और संतोष से भर देती है। इसके नतीजे जीवन में सफलता के दरवाजे खोल देते हैं। संदेह व निराशा से बचाकर रखती है। इसके विपरीत नकारात्मक सोच का व्यक्ति कभी भी जीवन में सफल नहीं बन सकता। प्रत्येक कार्य में उसे संदेह व निराशा घेर लेगी और दुःखी बना देगी।

आचार्यश्री तुलसी के शब्दों में कुछ लोग अतीत में जीते हैं और भविष्य की उड़ान भरते हैं और जो नहीं किया उसके लिए पछतावा करते रहते हैं। कभी समय को कोसते हैं, कभी परिस्थितियों को दोष देते हैं और कभी अपने भाग्य का रोना रोते हैं, ऐसे लोग निषेधात्मक भावों के खटोले में बैठकर जीवन पूरा करते हैं। हंसते-हंसते संघर्षों का सामना करते हैं और धैर्य के साथ आगे बढ़ जाते हैं, अपनी मंजिल तक पहुंच जाते हैं, ऐसे व्यक्ति विधायक विचारों के धनी होते हैं।

अपनी सोच में बदलाव लाने के लिए जरूरी है कि कुछ सूत्रों पर ध्यान दें–

- अपनी असफलता व परेशानियों के लिए दूसरों को दोषी न मानें। स्वयं की भूलों का परिमार्जन करने का प्रयत्न करें।
- उन्हीं लोगों से मिलना करें जो विधायक विचार रखते हैं, इसका प्रभाव हमारे पर अवश्य होगा।
- नकारात्मक विचार वाले व्यक्तियों से बचने का प्रयत्न करें। उपेक्षा करें।
- कुछ समय निकालकर जब भी अवसर प्राप्त हो साधु-संतों, महापुरुषों की उपासना व सान्निध्य का लाभ लें। इनके आभामंडल (वलय) में आनेवाले व्यक्ति के जीवन में बदलाव घटित होता है, सोच में सकारात्मक भाव पैदा होने लगते हैं।
- अपनी भावना पर नियंत्रण करें, नकारात्मक भाव को आने से रोकें फिर चाहे कोई भी समस्या आए विधायक भावों से उसका सामना करें। सम्यक् दृष्टिकोण से जीवन सफल बनेगा। मिथ्या दृष्टिकोण जीवन के पतन का कारण बनेगा। अपनी सोच को सही रखना ही सफलता की कुंजी है। ❐

अपने घर लौट आना है ध्यान

जे के कृष्णमूर्ति

ध्यान आनंद का मूल स्रोत है। यह तब भी होता है जब तुम कोई क्रिया नहीं करते, सोचते नहीं, बोलते नहीं, चाहते नहीं, पाते नहीं। बस, होने का नाम ध्यान है।

ध्यान सिर्फ आंख बंदकर बैठ जाना मात्र नहीं है। ध्यान का प्रथम आयाम है–उसे जानो। फिर दूसरा आयाम है–करो। ध्यान में होना सीख लेंगे तो फिर जीवन के किसी भी रूप में हम हों–चाहे फर्श साफ करें या झाड़ू निकालें, खाना पकाएं या दूकान में या ऑफिस में कार्यरत हों, इसे साधा जा सकता है।

ध्यान पलायन नहीं, संन्यास इसके लिए जरूरी नहीं। सब कुछ छोड़कर करने की क्रिया का नाम ध्यान नहीं। ध्यान है–सब कार्य करते हुए स्व में केंद्रित रहना। उस क्षण हम कर्ता नहीं, द्रष्टा बन जाते हैं। राग-द्वेष रहित क्रिया की प्रस्तुति ध्यान की अभिव्यंजना है।

जीवन में दो ही घटना घटती है। या तो हम बाहर देखते हैं या फिर स्व केंद्रित बनकर रह जाते हैं। अपने घर में लौट आना ही ध्यान की निष्पत्ति है।

यहूदी धर्म में विद्रोही साधकों की एक रहस्यधारा हसीद है जिसके संस्थापक बालशेम थे। वे हमेशा नदी के तट पर रात के समय जाते, आधी रात तक नदी के तट पर बैठते और वापस लौट आते।

एक रात जब वे नदी तट से लौट रहे थे तो रास्ते के बीच एक अमीर के बंगले के दरवाजे पर एक पहरेदार खड़ा मिला और उसने प्रतिदिन रात में नदी तट पर जाने की बात पूछी। बालशेम ने उत्तर देने से पहले ही पहरेदार से प्रश्न पूछ लिया–तुम्हारा काम क्या है?

पहरेदार–मैं एक साधारण पहरेदार हूं, रातभर पहरा देता हूं।

बालशेम–यही काम मैं भी कर रहा हूं। फर्क सिर्फ इतना सा है कि तुम देख रहे हो कि कहीं बाहर का कोई आदमी भीतर महल में न घुस आए और मैं बस उस देखने वाले को देखता रहता हूं। कौन है यह द्रष्टा–मैं स्वयं हूं। यह मेरे पूरे जीवन की साधना है कि मैं स्वयं को देखता हूं। पहरेदार ने आश्चर्यचकित होते हुए पूछा–फिर वेतन कौन देगा? बालशेम बोले–यह इतना आनंदपूर्ण कार्य है कि आह्लादकारी परमधन्यता स्वयं अपना पुरस्कार है। इसका एक क्षण–और सारे खजाने उसके सामने फीके हैं।'

आओ, तुम भी भीतर लौट आओ। अपनी चेतना को स्वयं के भीतर विश्राम लेने दो।

ध्यान का अर्थ है होश। जो भी होशपूर्वक किया जाए वो सब ध्यान है। सोए नहीं रहना है, जगना है। फिर जागना होश के लिए पहला चरण है– शरीर के प्रति सजग रहो। जब तुम शरीर की बदलती पर्यायों को, मुद्राओं को, रूप-रंग को देखने लग जाओगे तो अनेक अनावश्यक बातें तो स्वतः ही गिर जाएगी।

विचारों के प्रति होश में आना। जब भीतर के उठते विचारों के प्रति जागरूक बनोगे तो पागल मन बदल जाएगा। भावों का उतार–चढ़ाव, विचारों का वैषम्य खत्म हो जाएगा।

ध्यान में जागरण होता है तब शरीर जानता है देह-सुख, मन जानता है प्रसन्नता, हृदय जानता है हर्षोल्लास और तुरीय जानता है आनंद।

आनंद लक्ष्य है संन्यास का और उसका रास्ता है जागरूकता।

दृश्य स्वयं द्रष्टा बन जाता है।

ध्यान कुछ और नहीं, बस एक उपाय है अपने सच्चे स्वरूप के प्रति सजग करने का। ❐

फार्म-4 (नियम 8 देखिए)

1.	प्रकाशन स्थान	:	गंगाशहर, बीकानेर
2.	प्रकाशन अवधि	:	मासिक
3.	मुद्रक का नाम	:	दीपचंद सांखला
	क्या भारतीय नागरिक है	:	हां
	पता	:	सांखला प्रिंटर्स, विनायक शिखर शिवबाड़ी रोड, बीकानेर 334003
4.	प्रकाशक का नाम	:	बिनोदकुमार चोरड़िया
	क्या भारतीय नागरिक है	:	हां
	पता	:	जैन श्वेतांबर तेरापंथी महासभा शाखा कार्यालय : तेरापंथ भवन गंगाशहर 334401 (बीकानेर) राजस्थान
5.	संपादक का नाम	:	डॉ. शान्ता जैन
	क्या भारतीय नागरिक है	:	हां
	पता	:	जैन विश्व भारती, लाडनूं,
6.	उन व्यक्तियों के नाम व पते, जो समाचार पत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पत्र के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार या हिस्सेदार हों	:	जैन श्वेतांबर तेरापंथी महासभा 3, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कोलकाता-1

मैं, बिनोदकुमार चोरड़िया एतद्द्वारा घोषित करता हूं कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिए गए विवरण सत्य हैं।

बिनोदकुमार चोरड़िया
प्रकाशक के हस्ताक्षर

बिनोदकुमार चोरड़िया, जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, 3, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कोलकाता-1 के लिए जैन भारती कार्यालय, गंगाशहर, बीकानेर (राज.) से प्रकाशित एवं प्रेषित और सांखला प्रिंटर्स, बीकानेर द्वारा मुद्रित।

In Memory of

Late Sh. Sohan Lal Kataria

Wife Smt. Sunderbai

Son Manubhai, Praveenkumar, Janak, Yogesh

Vimal, Vikash, Vinay, Vishal, Gouraw, Chirag

Manav, Yash Kataria

Banglore, Mysore, Bemali (Raj.)

MD : VIMAL KATARIA (JAIN)
MD : MADHU KATARIA (JAIN)

VAISHNODEVI LUSH GREENS PRIVATE LIMITED

No. 13, Muthachari Industrial Estate, Nayandhalli
Mysore Road, Bangalore 560 039
e-mail : info@vaishnodeviproperty.com
Phone : 080-23146429, Mobile : 96207 99999

जैन भारती, मार्च, 2014 ■ प्रेषण दिनांक 28 फरवरी, 2014
भारत सरकार पं. सं. : 2643/57 ■ डाक पंजीयन संख्या : बीकानेर/048/2012-2014

शासनसेवी बुद्धमल दुगड़
सुरेन्द्रकुमार, तुलसीकुमार, कमलकुमार दुगड़
(कल्याण मित्र दुगड़ परिवार)

के.बी.डी. फाउण्डेशन
बुद्धमल सुरेन्द्र दुगड़ फाउण्डेशन
बुद्धमल तुलसी दुगड़ फाउण्डेशन
बीएमडी कमल दुगड़ फाउण्डेशन

201/504, वैष्णो चेंबर, 6, बेब्रॉर्न रोड, कोलकाता 700001
फोन : 22254103/4889

प्रेषक : जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, तेरापंथ भवन, महावीर चौक, गंगाशहर, बीकानेर 334401 • फोन : 0151-2270779

नोट : आपके पते में कोई कमी, अशुद्धि या पिन-कोड नहीं हो तो कृपया सूचित करें। ग्राहक संख्या अवश्य लिखें।